चतुर्थ अध्याय

जैनेतर साहित्य में दिगम्बरजैन मुनियों की चर्चा

प्रथम प्रकरण

वैदिकसाहित्य एवं संस्कृतसाहित्य में दिगम्बरजैन मुनि

दिगम्बरजैनमत की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए अब मैं जैनेतरसाहित्य से प्रमाण प्रस्तुत कर रहा हूँ। वे ऐसे प्रमाण हैं जो दिगम्बर-श्वेताम्बर परम्पराओं के ग्रन्थों की बजाय दोनों से भिन्न वैदिक और बौद्ध परम्पराओं के ग्रन्थों तथा संस्कृतसाहित्य में उपलब्ध हैं। इस कारण वे सर्वथा तटस्थ हैं। उनमें किसी प्रकार के पक्षपात और कपट की शंका के लिए स्थान नहीं है। उक्त ग्रन्थों तथा संस्कृतसाहित्य में जैनमत की उत्पत्तिविषयक घटनाएँ अवश्य साम्प्रदायिक विद्वेषवश असत्य और घृणोत्पादक रूप से गढ़ी गई हैं, किन्तु जैन मुनियों का जो रूप उनमें वर्णित है वह दिगम्बर और श्वेताम्बर जैनपरम्पराओं के अनुरूप है।

यहाँ वैदिकपरम्परा के ग्रन्थों को वैदिकसाहित्य और बौद्धपरम्परा के ग्रन्थों को बौद्धसाहित्य नाम से अभिहित किया जा रहा है। वैदिकपरम्परा का वर्तमान नाम हिन्दू-परम्परा है। हिन्दूसम्प्रदाय वेदों का अनुयायी है, अतः उसका वास्तविक नाम वैदिक-सम्पद्राय ही है। 'हिन्दू' शब्द तो प्राचीनकाल में भारत में आनेवाले ईरानियों के द्वारा भारत की सिन्धु नदी को 'हिन्दू' उच्चरित किये जाने के कारण प्रचलित हुआ है। (देखिये, डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर'-लिखित 'संस्कृति के चार अध्याय'/प्रकरण ३/ पृष्ठ ७८)। वैदिकपरम्परा के पुराणसाहित्य में वेदानुयायित्व और वेदबाह्यत्व के आधार पर ही धार्मिक सम्प्रदायों का विभाजन किया गया है। पुराणों में जैनों, बौद्धों और चार्वाकों को **वेदबाह्य** और **अवैदिक** कहा गया है तथा शेष प्राचीन भारतीय समुदाय को वैदिक। मत्स्यपुराण (३०० ई०) के **'जिनधर्मं समास्थाय वेदबाह्यं स वेदवित्'** (२४/२७) तथा **'वेदबाह्यान् परिज्ञाय'** (२४/४८) इन वाक्यों में जैनधर्म और जैनधर्मानुयायियों को 'वेदबाह्य' विशेषण दिया गया है। इसी सत्य का अनुसरण करते हुए डॉ० बलदेव उपाध्याय 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' (पृ.५९) में लिखते हैं— "राम वैदिक, बौद्ध तथा जैनधर्मों में समभाव से मर्यादा-पुरुष माने गये हैं।" इस तरह उपाध्याय जी ने हिन्दूसम्प्रदाय को वैदिकसम्प्रदाय के नाम से अभिहित किया

चतुर्थ अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है। पं० दलसुख मालवणिया ने लिखा है–"वैदिक दर्शनों के अनुयायी जब छह दर्शनों की चर्चा करते है, तब वे छह दर्शनों में केवल वैदिक दर्शनों (न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग और पूर्व एवं उत्तर मीमांसा) का ही समावेश करते हैं। किन्तु, प्रस्तुत 'षड्दर्शनसमुच्चय' में वैदिक-अवैदिक सब मिलाकर (दर्शनों की) छह संख्या है।" (षड्दर्शनसमुच्चय/प्रस्ता./पृ.७)। तात्पर्य यह कि न्याय, वैशेषिक आदि छह दर्शन भी **वैदिकदर्शन** के ही नाम से प्रसिद्ध हैं।

इन प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत अध्याय में वेद, उपनिषद् आदि के अतिरिक्त वेदानुयायी धार्मिकग्रन्थ रामायण, महाभारत तथा पुराण आदि को वैदिक-साहित्य के नाम से अभिहित किया गया है तथा संस्कृत में लिखित जिस साहित्य में साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन की प्रधानता न होकर काव्यात्मकता की प्रधानता है, उस गद्य-पद्य-नाट्यरूप साहित्य एवं कला-शिल्प-विषयक साहित्य को संस्कृतसाहित्य में परिगणित किया गया है। इन दोनों प्रकार के साहित्यों से एक ही शीर्षक के अन्तर्गत कालक्रमानुसार उद्धरण दिये जा रहे हैं।

वैदिकसाहित्य एवं संस्कृतसाहित्य में ऋग्वेद से लेकर ११वीं शताब्दी ई० तक के बीस से अधिक ग्रन्थों में दिगम्बरजैन मुनियों का उल्लेख किया गया है। एक पुराण में श्वेताम्बर मुनियों की भी चर्चा है। जिन ग्रंथों में ये उल्लेख हैं, उनके रचनाकाल तथा जिन ऐतिहासिक या पौराणिक मानव-पात्रों के साथ उनका वर्णन किया गया है, उनके काल से दिगम्बर-जैनमत की प्राचीनता का निश्चय किया जा सकता है।

दिगम्बरमत के ग्रंथों में बतलाया गया है कि दिगम्बरजैन मुनि यथाजातरूपधर (जन्म के समय जैसा रूप होता है, वैसे सर्वांगनिर्वस्त्र नग्नरूप को धारण करनेवाले) होते हैं, उनके हाथ में मयूरपिच्छी होती है तथा जब कोई उनकी वन्दना करता है, तब वे उसे 'धर्मवृद्धि हो' यह आशीर्वाद देते हैं। इसी प्रकार श्वेताम्बरीय ग्रन्थों में श्वेताम्बरमुनि को वस्त्र, पात्र, मुखवस्त्रिका, रजोहरण, कम्बल आदि अनेक उपकरणों का धारी तथा 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद देनेवाला वर्णित किया गया है। वैदिकसाहित्य एवं संस्कृतसाहित्य में दिगम्बर और श्वेताम्बर मुनि इसी रूप में चित्रित किये गये हैं। इन दोनों साहित्यों को मिश्रित कर उनसे कालक्रमानुसार उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१

ऋग्वेद में वातरशन मुनि, वृषभ, शिश्नदेव

वैदिकसाहित्य के प्रमुख ग्रन्थ ऋग्वेद की रचना कम से कम १५०० ई० पू० में मानी गई है। उसमें दिगम्बरजैन मुनियों का उल्लेख मिलता है। इस पर प्रकाश

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है। पं० दलसुख मालवणिया ने लिखा है–"वैदिक दर्शनों के अनुयायी जब छह दर्शनों की चर्चा करते है, तब वे छह दर्शनों में केवल वैदिक दर्शनों (न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग और पूर्व एवं उत्तर मीमांसा) का ही समावेश करते हैं। किन्तु, प्रस्तुत 'षड्दर्शनसमुच्चय' में वैदिक-अवैदिक सब मिलाकर (दर्शनों की) छह संख्या है।" (षड्दर्शनसमुच्चय/प्रस्ता./पृ.७)। तात्पर्य यह कि न्याय, वैशेषिक आदि छह दर्शन भी **वैदिकदर्शन** के ही नाम से प्रसिद्ध हैं।

इन प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत अध्याय में वेद, उपनिषद् आदि के अतिरिक्त वेदानुयायी धार्मिकग्रन्थ रामायण, महाभारत तथा पुराण आदि को वैदिक-साहित्य के नाम से अभिहित किया गया है तथा संस्कृत में लिखित जिस साहित्य में साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन की प्रधानता न होकर काव्यात्मकता की प्रधानता है, उस गद्य-पद्य-नाट्यरूप साहित्य एवं कला-शिल्प-विषयक साहित्य को संस्कृतसाहित्य में परिगणित किया गया है। इन दोनों प्रकार के साहित्यों से एक ही शीर्षक के अन्तर्गत कालक्रमानुसार उद्धरण दिये जा रहे हैं।

वैदिकसाहित्य एवं संस्कृतसाहित्य में ऋग्वेद से लेकर ११वीं शताब्दी ई० तक के बीस से अधिक ग्रन्थों में दिगम्बरजैन मुनियों का उल्लेख किया गया है। एक पुराण में श्वेताम्बर मुनियों की भी चर्चा है। जिन ग्रंथों में ये उल्लेख हैं, उनके रचनाकाल तथा जिन ऐतिहासिक या पौराणिक मानव-पात्रों के साथ उनका वर्णन किया गया है, उनके काल से दिगम्बर-जैनमत की प्राचीनता का निश्चय किया जा सकता है।

दिगम्बरमत के ग्रंथों में बतलाया गया है कि दिगम्बरजैन मुनि यथाजातरूपधर (जन्म के समय जैसा रूप होता है, वैसे सर्वांगनिर्वस्त्र नग्नरूप को धारण करनेवाले) होते हैं, उनके हाथ में मयूरपिच्छी होती है तथा जब कोई उनकी वन्दना करता है, तब वे उसे 'धर्मवृद्धि हो' यह आशीर्वाद देते हैं। इसी प्रकार श्वेताम्बरीय ग्रन्थों में श्वेताम्बरमुनि को वस्त्र, पात्र, मुखवस्त्रिका, रजोहरण, कम्बल आदि अनेक उपकरणों का धारी तथा 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद देनेवाला वर्णित किया गया है। वैदिकसाहित्य एवं संस्कृतसाहित्य में दिगम्बर और श्वेताम्बर मुनि इसी रूप में चित्रित किये गये हैं। इन दोनों साहित्यों को मिश्रित कर उनसे कालक्रमानुसार उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१

ऋग्वेद में वातरशन मुनि, वृषभ, शिश्नदेव

वैदिकसाहित्य के प्रमुख ग्रन्थ ऋग्वेद की रचना कम से कम १५०० ई० पू० में मानी गई है। उसमें दिगम्बरजैन मुनियों का उल्लेख मिलता है। इस पर प्रकाश

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

डालते हुए डॉ० हीरालाल जी जैन **भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान** नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—

"भागवतपुराण के पाँचवें स्कंध के प्रथम छह अध्यायों में ऋषभदेव के वंश, जीवन व तपश्चरण का वृतान्त वर्णित है, जो सभी मुख्य-मुख्य बातों में जैन पुराणों से मिलता है। उनके माता-पिता के नाम नाभि और मरुदेवी पाये जाते हैं, तथा उन्हें स्वयंभू मनु की पाँचवी पीढ़ी में इस क्रम से हुए कहा गया है—स्वयंभूमनु , प्रियव्रत, आग्नीध्र, नाभि और ऋषभ। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को राज्य देकर संन्यास ग्रहण किया। वे नग्न रहने लगे और केवल शरीरमात्र ही उनके पास था। लोगों द्वारा तिरस्कार किये जाने, गाली-गलौच किये जाने व मारे जाने पर भी वे मौन ही रहते थे। अपने कठोर तपश्चरण द्वारा उन्होंने कैवल्य की प्राप्ति की, तथा दक्षिण कर्नाटक तक नाना प्रदेशों में परिभ्रमण किया। वे कुटकाचल पर्वत के वन में उन्मत्त की नाईं नग्नरूप में विचरने लगे। बाँसों की रगड़ से वन में आग लग गई और उसी में उन्होंने अपने को भस्म कर डाला।

"भागवतपुराण में यह भी कहा गया है कि ऋषभदेव के इस चरित्र को सुनकर कोंक, बैक व कुटक का राजा अर्हन् कलयुग में अपनी इच्छा से उसी धर्म का संप्रवर्तन करेगा, इत्यादि। इस वर्णन से इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि भागवतपुराण का तात्पर्य जैन पुराणों के ऋषभ तीर्थंकर से ही है, और अर्हन् राजा द्वारा प्रवर्तित धर्म का अभिप्राय जैनधर्म से। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि भागवतपुराण तथा वैदिक परम्परा के अन्य प्राचीन ग्रन्थों में ऋषभदेव के संबंध की बातों की कुछ गहराई से जाँच-पड़ताल की जाय। भागवतपुराण में कहा गया है कि—

"**बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त! भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तन्वावततार।**" (भा.पु./५/३/२०)।

"हे विष्णुदत्त पारीक्षित! यज्ञ में परम ऋषियों द्वारा प्रसन्न किये जाने पर स्वयं श्री भगवान् (विष्णु) महाराज नाभि का प्रिय करने के लिये उनके रनिवास में महारानी मेरुदेवी के गर्भ में आए। उन्होंने इस पवित्र शरीर से (शुक्लया तन्वा) अवतार वातरशन श्रमण ऋषियों के धर्मों को प्रकट करने की इच्छा से ग्रहण किया।"

"भागवतपुराण के इस कथन में दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं, क्योंकि उनका भगवान् ऋषभदेव के भारतीय संस्कृति में स्थान तथा उनकी प्राचीनता और साहित्यिक परंपरा से बड़ा घनिष्ठ और महत्त्वपूर्ण संबंध है। एक तो यह कि ऋषभदेव की मान्यता और पूज्यता के संबंध में जैन और हिन्दुओं के बीच कोई मतभेद नहीं

है। जैसे वे जैनियों के आदि तीर्थंकर हैं, उसी प्रकार वे हिन्दुओं के लिए साक्षात् भगवान् विष्णु के अवतार हैं। उनके ईश्वरावतार होने की मान्यता प्राचीनकाल में इतनी बद्धमूल हो गयी थी कि शिवमहापुराण में भी उन्हें शिव के अट्ठाईस योगावतारों में गिनाया गया है (शिवमहापुराण / ७ / २/ ९)। दूसरी बात यह है कि प्राचीनता में यह अवतार राम और कृष्ण के अवतारों से भी पूर्व का माना गया है। इस अवतार का जो हेतु भागवतपुराण में बतलाया गया है उससे श्रमणधर्म की परम्परा भारतीय साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद से निःसन्देहरूप से जुड़ जाती है। ऋषभावतार का हेतु वातरशन श्रमण ऋषियों के धर्म को प्रकट करना बतलाया गया है। भागवतपुराण में यह भी कहा गया है कि-'**अयमवतारो रजसोपप्लुत-कैवल्योपशिक्षणार्थः**' (भा.पु. / ५ / ६/१२)।

"अर्थात् भगवान् का यह अवतार रजोगुण से भरे हुए लोगों को कैवल्य की शिक्षा देने के लिए हुआ। किन्तु उक्त वाक्य का यह अर्थ भी संभव है कि यह अवतार रज से उपप्लुत अर्थात् रजोधारण (मलधारण) वृत्ति द्वारा कैवल्यप्राप्ति की शिक्षा देने के लिए हुआ था। जैन मुनियों के आचार में अस्नान, अदन्तधावन, मलपरीषह आदि द्वारा रजोधारण संयम का आवश्यक अंग माना गया है। बुद्ध के समय में भी रजोजल्लिक श्रमण विद्यमान थे। बुद्ध भगवान् ने श्रमणों की आचार-प्रणाली में व्यवस्था लाते हुए एक बार कहा था—

"**नाहं भिक्खवे संघाटिकस्य संघाटिधारणमत्तेन सामञ्ञं वदामि, अचेलकस्स अचेलकमत्तेन रजोजल्लिकस्य रजोजल्लिकमत्तेन --- जटिलकस्स जटाधारणमत्तेन सामञ्ञं वदामि।**" (मज्झिमनिकाय / ४०)।

"अर्थात् हे भिक्षुओ! मैं संघाटिक के संघाटी-धारणमात्र से श्रामण्य नहीं कहता, अचेलक के अचेलकत्वमात्र से, रजोजल्लिक के रजोजल्लिकत्व-मात्र से और जटिलक के जटाधारण-मात्र से भी श्रामण्य नहीं कहता।

"अब प्रश्न यह होता है कि जिन वातरशन मुनियों के धर्मों की स्थापना करने तथा रजोजल्लिक वृत्ति द्वारा कैवल्य की प्राप्ति सिखलाने के लिये भगवान् ऋषभदेव का अवतार हुआ था, वे कब से भारतीय साहित्य में उल्लिखित पाये जाते हैं। इसके लिये जब हम भारत के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों को देखते हैं, तो हमें वहाँ भी वातरशन मुनियों का उल्लेख अनेक स्थलों में दिखाई देता है।

"ऋग्वेद की वातरशन मुनियों के संबंध की ऋचाओं में उन मुनियों की साधनाएँ ध्यान देने योग्य हैं। एक सूक्त की कुछ ऋचाएँ देखिये—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मुनयो वातरशनाः पिशंगा वसते मला।
वातस्यानु ध्राजिं यन्ति यद्देवासो अविक्षत॥

उन्मदिता मौनेयेन वाताँ आ तस्थिमा वयम्।
शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अभि पश्यथ॥

(ऋग्वेद / १०/१३६/२-३)।

"विद्वानों के नाना प्रयत्न होने पर भी अभी तक वेदों का निस्संदेहरूप से अर्थ बैठाना संभव नहीं हो सका है। तथापि सायणभाष्य की सहायता से मैं उक्त ऋचाओं का अर्थ इस प्रकार करता हूँ—अतीन्द्रियार्थदर्शी वातरशन मुनि मल धारण करते हैं, जिससे वे पिंगल वर्ण दिखाई देते हैं। जब वे वायु की गति को प्राणोपासना द्वारा धारण कर लेते हैं, अर्थात् रोक लेते हैं, तब वे अपनी तप की महिमा से दीप्यमान होकर देवतास्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं। सर्व लौकिक व्यवहार को छोड़कर हम मौनवृत्ति से उन्मत्तवत् (उत्कृष्ट आनन्दसहित) वायुभाव (अशरीरी ध्यानवृत्ति) को प्राप्त होते हैं, और तुम साधारण मनुष्य हमारे बाह्य शरीरमात्र को देख पाते हो, हमारे सच्चे आभ्यंतर स्वरूप को नहीं (ऐसा वे वातरशन मुनि प्रकट करते हैं)।

"**ऋग्वेद** में उक्त ऋचाओं के साथ 'केशी' की स्तुति की गई है—

केश्यग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते॥ (१०/१३६/१)।

"केशी अग्नि, जल तथा स्वर्ग और पृथ्वी को धारण करता है। केशी समस्त विश्व के तत्त्वों का दर्शन कराता है। केशी ही प्रकाशमान ज्योति (केवलज्ञानी) कहलाता है।

"केशी की यह स्तुति उक्त वातरशन मुनियों के वर्णन आदि में की गई है, जिससे प्रतीत होता है कि केशी वातरशन मुनियों के वर्णन के प्रधान थे।

"ऋग्वेद के इन केशी व वातरशन मुनियों की साधनाओं की भागवतपुराण में उल्लिखित वातरशन श्रमण ऋषि, उनके अधिनायक ऋषभ और उनकी साधनाओं की तुलना करने योग्य है। ऋग्वेद के वातरशन मुनि और भागवत के 'वातरशन श्रमण ऋषि' एक ही सम्प्रदाय के वाचक हैं, इसमें तो किसी को किसी प्रकार का सन्देह होने का अवकाश नहीं दिखाई देता है। केशी का अर्थ केशधारी होता है, जिसका अर्थ सायणाचार्य ने 'केशस्थानीय रश्मियों को धारण करनेवाले' किया है, और उससे सूर्य का अर्थ निकाला है। किन्तु उसकी कोई सार्थकता व संगति वातरशन मुनियों के साथ नहीं बैठती, जिनकी साधनाओं का उस सूक्त में वर्णन है। केशी स्पष्टतः

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

वातरशन मुनियों के अधिनायक ही हो सकते हैं, जिनकी साधना में मलधारणा, मौनवृत्ति और उन्माद भाव का विशेष उल्लेख है। सूक्त में आगे उन्हें ही **'मुनिर्देवस्य देवस्य सौकृत्याय सखा हितः'** (ऋ.वे./१०/१३६/४) अर्थात् देवदेवों के मुनि व उपकारी और हितकारी सखा कहा है। वातरशन शब्द में और मलरूपी वसनधारण करने में उनकी नाग्न्यवृत्ति का भी संकेत हैं। इसकी भागवतपुराण में ऋषभ के वर्णन से तुलना कीजिये—

''उर्वरितशरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात् प्रवव्राज। जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीं बभूव। --- परागवलम्बमानकुटिलजटिलकपिशकेशभूरिभारोऽवधूतमलिननिजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यत।'' (भा.पु./५/५/२८,२९-३१/पृ.२११)।

''अर्थात् ऋषभ भगवान् के शरीरमात्र परिग्रह बच रहा था। वे उन्मत्त के समान दिगम्बरवेशधारी, बिखरे हुए केशों-सहित आहवनीय अग्नि को अपने में धारण करके ब्रह्मावर्त देश से प्रव्रजित हुए। वे जड़, अन्ध, मूक, बधिर, पिशाचोन्मादयुक्त जैसे अवधूतवेष में लोगों के बुलाने पर भी मौनवृत्ति धारण किए हुए चुप रहते थे। --- सब ओर लटकते हुए अपने कुटिल, जटिल, कपिश केशों के भारसहित अवधूत और मलिन शरीरसहित वे ऐसे दिखाई देते थे, जैसे मानों उन्हें भूत लगा हो।

''यथार्थतः यदि ऋग्वेद के उक्त केशीसंबंधी सूक्त को, तथा भागवतपुराण में वर्णित ऋषभदेव के चरित्र को सन्मुख रखकर पढ़ा जाय, तो पुराण में वेद के सूक्त का विस्तृत भाष्य किया गया सा प्रतीत होता है। वही वातरशन या गगनपरिधानवृत्ति केश-धारण, कपिश वर्ण, मलधारण, मौन और उन्मादभाव समान रूप से दोनों में वर्णित हैं। ऋषभ भगवान् के कुटिल केशों की परम्परा जैन मूर्तिकला में प्राचीनतम काल से आज तक अक्षुण्ण पाई जाती है। यथार्थतः समस्त तीर्थंकरों में केवल ऋषभ की ही मूर्तियों के सिर पर कुटिल केशों का रूप दिखलाया जाता है, और वही उनका प्राचीन विशेष लक्षण भी माना जाता है। इस संबंध में मुझे केशरियानाथ का स्मरण आता है, जो ऋषभनाथ का ही नामान्तर है। केसर, केश और जटा एक ही अर्थ के वाचक हैं **'सटा जटाकेसरयोः'**। (विश्वलोचनकोश / टान्तवर्ग / ३०)। सिंह भी अपने केशों के कारण केसरी कहलाता है। इस प्रकार केशी और केसरी एक ही केशरियानाथ या ऋषभनाथ के वाचक प्रतीत होते हैं। केशरियानाथ पर जो केशर चढ़ाने की विशेष मान्यता प्रचलित है, वह नामसाम्य के कारण उत्पन्न हुई प्रतीत होती है। जैन पुराणों में भी ऋषभ की जटाओं का सदैव उल्लेख किया गया है। पद्मपुराण

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

(३/२८८) में वर्णन है-'**वातोद्धूता जटास्तस्य रेजुराकुलमूर्तयः**' और हरिवंशपुराण (९/२०४) में उन्हें कहा है-'**सप्रलम्बजटाभार-भ्राजिष्णुः**।' इस प्रकार ऋग्वेद के केशी और वातरशन मुनि, तथा भागवतपुराण के ऋषभ और वातरशन-श्रमण-ऋषि एवं केसरियानाथ ऋषभ तीर्थंकर और उनका निर्ग्रन्थसम्प्रदाय एक ही सिद्ध होते हैं।

"केशी और ऋषभ के एक ही पुरुषवाची होने के उक्त प्रकार अनुमान करने के पश्चात् हठात् मेरी दृष्टि ऋग्वेद की एक ऐसी ऋचा पर पड़ गई, जिसमें वृषभ और केशी का साथ-साथ उल्लेख आया है। वह ऋचा इस प्रकार है—

ककर्दवे वृषभो युक्त आसीद् अवावचीत् सारथिरस्य केशी।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्तिष्मा निष्पदो मुद्गलानीम्॥
(ऋग्वेद /१०/१०२/६)।

"जिस सूक्त में यह ऋचा आई है उसकी प्रस्तावना में निरुक्त के जो '**मुद्गलस्य हृता गावः**' आदि श्लोक उद्धृत किए गए हैं, उनके अनुसार मुद्गल ऋषि की गौओं को चोर चुरा ले गए थे। उन्हें लौटाने के लिए ऋषि ने केशी वृषभ को अपना सारथी बनाया, जिसके वचन मात्र से वे गौएँ आगे को न भागकर पीछे की और लौट पड़ीं। प्रस्तुत ऋचा का भाष्य करते हुए **सायणाचार्य** ने पहले तो वृषभ और केशी का वाच्यार्थ पृथक् बतलाया है, किंतु फिर प्रकारान्तर से उन्होंने कहा है—

"**अथवा, अस्य सारथिः सहायभूतः केशी प्रकृष्टकेशो वृषभः अवावचीत् भ्रशमशब्दयत्**" इत्यादि।

"सायण के इसी अर्थ को तथा निरुक्त के उक्त कथा-प्रसंग को भारतीय दार्शनिक परम्परानुसार ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत गाथा का मुझे यह अर्थ प्रतीत होता है—

"मुद्गल ऋषि के सारथी (विद्वान् नेता) केशी वृषभ, जो शत्रुओं का विनाश करने के लिए नियुक्त थे, उनकी वाणी निकली, जिसके फलस्वरूप जो मुद्गल ऋषि की गौएँ (इन्द्रियाँ) जुते हुए दुर्धर रथ (शरीर) के साथ दौड़ रही थीं, वे निश्चल होकर मौद्गलानी (मुद्गल की स्वात्मवृत्ति) की और लौट पड़ीं।

"तात्पर्य यह कि मुद्गल ऋषि की जो इन्द्रियाँ पराङ्मुखी थीं, वे उनके योगयुक्त ज्ञानी नेता केशी वृषभ के धर्मोपदेश को सुनकर अन्तर्मुखी हो गईं।

"इस प्रकार केशी और वृषभ या ऋषभ के एकत्व का स्वयं ऋग्वेद से ही पूर्णतः समर्थन हो जाता है। विद्वान् इस एकीकरण पर विचार करें। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि वेदों का अर्थ करने में विद्वान् अभी पूर्णतः सफल नहीं हो सके हैं। विशेषतः वेदों की जैसी भारतीय संस्कृति में पदप्रतिष्ठा है, उसकी दृष्टि से तो अभी

उनके समझने-समझाने में बहुत सुधार की आवश्यकता है। मुझे आशा है कि केशी, वृषभ या ऋषभ तथा वातरशन मुनियों के वेदान्तर्गत समस्त उल्लेखों के सूक्ष्म अध्ययन से इस विषय के रहस्य का पूर्णतः उद्घाटन हो सकेगा। क्या ऋग्वेद (४/५८/३) के **'त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यानाविवेश'** का यह अर्थ नहीं हो सकता कि त्रिधा (ज्ञान, दर्शन और चारित्र से) अनुबद्ध वृषभ ने धर्म-घोषणा की और वे एक महान् देव के रूप में मर्त्यों में प्रविष्ट हुए? इसी संबंध में ऋग्वेद के शिश्नदेवों (नग्न देवों) वाले उल्लेख भी ध्यान देने योग्य हैं (ऋ० वे० / ७ / २१ / ५ / एवं १० / ९९ / ३)। इस प्रकार ऋग्वेद में उल्लिखित वातरशन मुनियों के निर्ग्रन्थ साधुओं तथा उन मुनियों के नायक केशी मुनि का ऋषभदेव के साथ एकीकरण हो जाने से जैनधर्म की प्राचीन परम्परा पर बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। वेदों के रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों के बीच बहुत मतभेद है। कितने ही विद्वानों ने उन्हें ई० सन् से ५००० वर्ष व उससे भी अधिक पूर्व रचा गया माना है। किन्तु आधुनिक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों का बहुमत यह है कि वेदों की रचना उसके वर्तमानरूप में ई० पूर्व सन् १५०० के लगभग हुई होगी। चारों वेदों में ऋग्वेद सबसे प्राचीन माना जाता है। अत एव ऋग्वेद की ऋचाओं में ही वातरशन मुनियों तथा 'केशी ऋषभदेव' का उल्लेख होने से जैनधर्म को अपने प्राचीन रूप में ई० पूर्व सन् १५०० में प्रचलित मानना अनुचित न होगा। 'केशी' नाम जैनपरम्परा में प्रचलित रहा, इसका प्रमाण यह है कि महावीर के समय में पार्श्व-सम्प्रदाय के नेता का नाम केशीकुमार था। (उत्तरा.१३)।

''उक्त वातरशना मुनियों की जो मान्यता व साधनाएँ वैदिक ऋचा में भी उल्लिखित हैं, उन पर से हम इस परम्परा को वैदिक परम्परा से स्पष्टतः पृथक् रूप से समझ सकते हैं। वैदिक ऋषि वैसे त्यागी और तपस्वी नहीं थे जैसे ये वातरशना मुनि थे। वे ऋषि स्वयं गृहस्थ हैं, यज्ञसम्बन्धी विधिविधान में आस्था रखते हैं और अपनी इहलौकिक इच्छाओं जैसे पुत्र, धन, धान्य आदि सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए इन्द्रादि देवी-देवताओं का आह्वान करते-कराते हैं, तथा इसके उपलक्ष्य में यजमानों से धन-सम्पत्ति का दान स्वीकार करते हैं। किन्तु इसके विपरीत वातरशन मुनि उक्त क्रियाओं में रत नहीं होते। समस्त गृह-द्वार, स्त्री-पुरुष, धन-धान्य आदि परिग्रह, यहाँ तक कि वस्त्र का भी परित्याग कर, भिक्षावृत्ति से रहते हैं। शरीर का स्नानादि संस्कार न कर मलधारण किये रहते हैं। मौनवृत्ति से रहते हैं, तथा अन्य देवी-देवताओं के आराधन से मुक्त आत्मध्यान में ही अपना कल्याण समझते हैं। स्पष्टतः यह उस श्रमणपरम्परा का प्राचीन रूप है, जो आगे चलकर अनेक अवैदिक सम्प्रदायों के रूप में प्रगट हुई और जिनमें से दो अर्थात् जैन और बौद्ध सम्प्रदाय आज तक भी विद्यमान हैं। प्राचीन समस्त भारतीय साहित्य, वैदिक, बौद्ध व जैन तथा शिलालेखों में भी ब्राह्मण

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

और श्रमण सम्प्रदायों का उल्लेख मिलता है। जैन एवं बौद्ध साधु आज तक भी श्रमण कहलाते हैं। वैदिक परम्परा के धार्मिक गुरु कहलाते थे ऋषि, जिनका वर्णन ऋग्वेद में बारम्बार आया है। किन्तु श्रमणपरम्परा के साधुओं की संज्ञा मुनि थी, जिसका उल्लेख ऋग्वेद में केवल उन वातरशन मुनियों के संबंध को छोड़ अन्यत्र कहीं नहीं आया। ऋषि-मुनि कहने से दोनों सम्प्रदायों का ग्रहण समझना चाहिये। पीछे परस्पर इन सम्प्रदायों का खूब आदान-प्रदान हुआ और दोनों शब्दों को प्रायः एक-दूसरे का पर्यायवाची माना जाने लगा।" (भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान/पृ.११-१८)।

शिश्नदेव—ऋग्वेद के दो सूक्तों में शिश्नदेवों अर्थात् नग्नदेवों की चर्चा है। यथा—

न यातव इन्द्र जूजुवर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतंनः॥ ७/२१॥

अनुवाद—"हे इन्द्र! हे शक्तिमान् देव! न तो दुष्टात्माओं ने हमें अपने कुचक्रों से प्रेरित किया है, न राक्षसों ने। हमारा सच्चा देव हमारे शत्रुओं को वश में करे। शिश्नदेव हमारे पवित्र यज्ञ के समीप न आवें।"

स वाजं यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परि षदत्सनिष्यन्।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो धनञ्जिश्नदेवाँ अभि वर्पसा भूत्॥ १०/९९॥

अनुवाद—"वह (इन्द्र) अत्यन्त शुभमार्ग से युद्ध के लिये जाता है। उसने स्वर्ग के प्रकाश को जीतने के लिए अत्यन्त कठिन परिश्रम किया, उसे पाने को वह बहुत उत्सुक था। उसने शिश्नदेवों को मारकर सौ द्वारों वाले दुर्ग की निधि पर अधिकार कर लिया।"

ए० एम० मैक्डानल ने अपने ग्रन्थ **वैदिक माइथॉलॉजी** में कहा है कि "शिश्नदेवों की पूजा ऋग्वेद के धार्मिक विचारों के प्रतिकूल रही होगी, क्योंकि उन्हें यज्ञस्थल में न आने देने के लिए इन्द्र से प्रार्थना की गयी है। ऋग्वेद में यह भी कहा गया है कि जब इन्द्र ने सौ द्वारोंवाले दुर्ग में खजाने को छिपा हुआ देखा, तब उसने शिश्नदेवों का वधकर उस खजाने पर कब्जा कर लिया।" (देखिये, 'वैदिक माइथॉलॉजी' का रामकुमार राय-कृत हिन्दी अनुवाद/पृ.२९६)।

'शिश्नदेव' इस नाम वैशिष्ट्य तथा शिश्नदेवों के वेदप्रतिकूल धर्म-दर्शन से स्पष्ट है कि वे नग्न देवों अर्थात् नग्न तीर्थंकरों की उपासना करनेवाले निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के लोग थे। पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री ने लिखा है कि "प्रायः सभी विद्वानों ने 'शिश्नदेवाः' का अर्थ शिश्न को देवता माननेवाले अर्थात् लिंगपूजक किया है। किन्तु इसका एक दूसरा अर्थ भी होता है—शिश्नयुत देवता को माननेवाले अर्थात् जो नंगे देवताओं को

पूजते हैं।'' (जै.सा.इ./पू.पी./पृ. १०४)। यह दूसरा अर्थ ही युक्तिसंगत और इतिहास सम्मत है।

२

अथर्ववेद एवं ब्राह्मणग्रन्थों में यति और व्रात्य

''ऋग्वेद में मुनियों के अतिरिक्त यतियों का भी उल्लेख बहुतायत से आया है। ये यति भी ब्राह्मणपरम्परा के न होकर श्रमणपरम्परा के ही साधु सिद्ध होते हैं, जिनके लिये यह संज्ञा समस्त जैनसाहित्य में उपयुक्त होते हुए आज तक भी प्रचलित है। यद्यपि आदि में ऋषियों, मुनियों और यतियों के बीच ढारमेल पाया जाता है और वे समान रूप से पूज्य माने जाते थे, किन्तु कुछ (समय) ही पश्चात् यतियों के प्रति वैदिक परम्परा में महान् रोष उत्पन्न होने के प्रमाण हमें ब्राह्मणग्रंथों में मिलते हैं, जहाँ इन्द्र द्वारा यतियों को शालावृकों (शृगालों व कुत्तों) द्वारा नुचवाये जाने का उल्लेख मिलता है। (तैत्तिरीयसंहिता/२,४,९,२;६,२,७,५ ताण्ड्यब्राह्मण/१४,२,२८;१८, १,९)। किन्तु इन्द्र के इस कार्य को देवों ने उचित नहीं समझा और उन्होंने इसके लिये इन्द्र का बहिष्कार भी किया (ऐतरेय ब्राह्मण ७,२८)। ताण्ड्यब्राह्मण के टीकाकारों ने यतियों का अर्थ किया है '**वेदविरुद्धनियमोपेत, कर्मविरोधिजन, ज्योतिष्टोमादि अकृत्वा प्रकारान्तरेण वर्तमान**' आदि, इन विशेषणों से उनकी श्रमण-परम्परा स्पष्ट प्रमाणित हो जाती है। भगवद्गीता में ऋषियों, मुनियों और यतियों का स्वरूप भी बतलाया है और उन्हें समानरूप से योगप्रवृत माना है। यहाँ मुनि को इन्द्रिय और मन का संयम करनेवाला, इच्छा, भय व क्रोधरहित मोक्षपरायण व सदा मुक्त के समान माना है (भ.गी.५/१८) और यति को काम-क्रोध-रहित, संयत-चित्त व वीतराग कहा है (भ.गी.५/२६, ८/ ११ आदि)। अथर्ववेद के १५वें अध्याय में व्रात्यों का वर्णन आया है। सामवेद के ताण्ड्य-ब्राह्मण व लाट्यायन, कात्यायन व आपस्तंबीय श्रौतसूत्रों में व्रात्यस्तोमविधि द्वारा उन्हें शुद्ध कर वैदिकपरम्परा में सम्मिलित करने का भी वर्णन है। ये व्रात्य वैदिकविधि से 'अदीक्षित व संस्कारहीन' थे। वे अदुरुक्त वाक्य को दुरुक्तरीति से, (वैदिक व संस्कृत नहीं, किन्तु अपने समय की प्राकृत भाषा) बोलते थे, वे 'ज्याहृद' (प्रत्यंचारहित धनुष) धारण करते थे। मनुस्मृति (१०वें अध्याय) में लिच्छवि, नाथ, मल आदि क्षत्रिय जातियों को व्रात्यों में गिनाया है। इन सब उल्लेखों पर सूक्ष्मता से विचार करने से इसमें सन्देह नहीं रहता कि ये व्रात्य भी श्रमणपरम्परा के साधु व गृहस्थ थे, जो वेद-विरोधी होने से वैदिक अनुयायियों के कोप-भाजन हुए हैं। जैनधर्म के मुख्य पाँच अहिंसादि नियमों को व्रत कहा है। उन्हें ग्रहण करनेवाले श्रावक देशविरत या अणुव्रती और मुनि महाव्रती कहलाते हैं। जो विधिवत् व्रत ग्रहण नहीं

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

करते, तथापि धर्म में श्रद्धा रखते हैं, वे अविरत सम्यग्दृष्टि कहे जाते हैं। इसी प्रकार के व्रतधारी 'व्रात्य' कहे गये प्रतीत होते हैं, क्योंकि वे हिंसात्मक यज्ञविधियों के नियम से त्यागी होते हैं। इसीलिये उपनिषदों में कहीं-कहीं उनकी बड़ी प्रशंसा भी पाई जाती है, जैसे प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है—'**व्रात्यस्त्वं प्राणैकर्षिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः**' (२/११)। शांकरभाष्य में व्रात्य का अर्थ '**स्वभावत एव शुद्ध इत्यभिप्रायः**' किया गया है। इस प्रकार श्रमण-साधनाओं की परम्परा हमें नाना प्रकार के स्पष्ट व अस्पष्ट उल्लेखों द्वारा ऋग्वेद आदि समस्त वैदिक साहित्य में दृष्टिगोचर होती है।'' (भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान/पृ.१८-१९)।

इस प्रकार कम से कम १५०० वर्ष ई० पू० में रचित ऋग्वेद में **मुनयो वातरशनाः** (वायुरूप वस्त्रधारी मुनि) **शिश्नदेवाः** (नग्नदेव के अनुयायी), यतियों एवं व्रात्यों के उल्लेखों से सिद्ध है कि दिगम्बरजैन मुनि १५०० वर्ष ई० पू० में विद्यमान थे और **वातरशन मुनि** शब्द दिगम्बर जैन मुनियों का ही वाचक था, यह छठी शताब्दी ई० के **श्रीमद्भागवतपुराण** एवं जैनाचार्य जिनसेनकृत 'आदिपुराण' (देखिए, अगला शीर्षक ३) के विवरणों से प्रमाणित है।

३
तैत्तिरीयारण्यक में वातरशन श्रमण

तैत्तिरीय आरण्यक में भी वातरशन श्रमणों का कथन है। उससे ज्ञात होता है कि ऋषियों को जब आत्मविद्या की जिज्ञासा होती थी, तब वे वातरशन श्रमणों के पास जाकर उसका उपदेश प्राप्त करते थे। **तैत्तिरीय आरण्यक** का निम्नलिखित वक्तव्य इसी तथ्य पर प्रकाश डालता है—

''**वातरशना ह वा ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनो बभूवुस्तानृषयोऽर्थमायंस्तेऽनिलायमचरंस्तेऽनुप्रविशुः कूष्माण्डानि तांस्तेष्वन्वविन्दन श्रद्धयाच तपसा च। तानृषयोऽब्रुवन् कया निलायं चरथेति ते ऋषीनब्रुवन्नमो वोऽस्तु भगवन्तोऽस्मिन् धाम्नि केन वः सपर्यामेति तानृषयोऽब्रुवन् पवित्रं नो ब्रूत येनोरेपसः स्यामेति त एतानि सूक्तान्यपश्यन्।**''[१]

अनुवाद—''वातरशन-श्रमण-ऋषि ऊर्ध्वमन्थी (परमात्मपद की ओर उत्क्रमण करने वाले) हुए। उनके समीप इतर ऋषि प्रयोजनवश (याचनार्थ) उपस्थित हुए। उन्हें देखकर वातरशन कूष्माण्डनामक मन्त्रवाक्यों में अन्तर्हित हो गये, तब उन्हें अन्य ऋषियों ने श्रद्धा और तप से प्राप्त कर लिया। ऋषियों ने उन वातरशन मुनियों से प्रश्न

१. तैत्तिरीय आरण्यक २/ प्रपाठक ७/ अनुवाक १-२ (तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा/ खण्ड ४/ विद्यानन्द मुनि : आद्य मिताक्षर/ पा.टि./ पृ. ७)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किया—"किस विद्या से आप अन्तर्हित हो जाते हैं?" वातरशन मुनियों ने उन्हें अपने अध्यात्मधाम से आए हुए अतिथि जानकर कहा–"हे मुनिजनो! आपको नमस्कार। हम आपकी सपर्या (सत्कार) किससे करें?" ऋषियों ने कहा–"हमें पवित्र आत्मविद्या का उपदेश दीजिये, जिससे हम निष्पाप हो जायँ।"

दिगम्बर जैनाचार्य जिनसेनकृत **आदिपुराण** में इन्द्र द्वारा एक हजार नामों से भगवान् आदिनाथ की स्तुति की गई है, जिनमें एक नाम 'वातरशन' है, जो दिगम्बर, निरम्बर और निर्ग्रन्थ का पर्यायवाची है—"**दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः।**" (आदि-पुराण/२५/२०४)।

४

निघण्टु (८०० ई० पू०) में श्रमण, दिगम्बर, वातवसन

शब्दसूची, विशेषरूप से वैदिक शब्दसूची को निघण्टु कहते हैं। इसकी व्याख्या महर्षि यास्क ने अपने **निरुक्त** में की है। इससे स्पष्ट है कि **निघण्टु** यास्क-विरचित 'निरुक्त' से प्राचीन है। "यास्क पाणिनी से प्राचीन हैं। महाभारत के शान्तिपर्व (अध्याय ३४२) में यास्क के निरुक्तकार होने का स्पष्ट निर्देश है—

स्तुत्वा मां शिपिविष्टेति यास्क ऋषिरुदारधीः।
यत्प्रसादादधो नष्टं निरुक्तमभिजग्मवान्॥ ७३॥

इस उल्लेख के आधार पर भी हम यास्क को विक्रम से सात-आठ सौ वर्ष पूर्व मानने के लिए बाध्य होते हैं।"[२]

अतः 'निघंटु' का रचनाकाल इससे भी पूर्व का है। **वाल्मीकि रामायण** (५०० ई०पू०) में कहा गया है कि राजा दशरथ के यज्ञ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, तापस और श्रमण आहार ग्रहण करते थे—

ब्राह्मणा भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते।
तापसा भुञ्जते चापि श्रमणाश्चैव भुञ्जते॥ १४/१२॥

उक्त **रामायण** की **भूषणटीका** में 'निघंटु' को उद्धृत करते हुए 'श्रमण' शब्द का अर्थ 'दिगम्बर' और वातवसन (वायु ही है वस्त्र जिसका) बतलाया गया है, यथा—"**श्रमणा दिगम्बरा श्रमणा वातवसना इति निघण्टुः।**"[३]

निघण्टु का यह उद्धरण इस बात का साक्षी है कि ईसा से ८०० वर्ष पहले दिगम्बरजैन मुनियों का अस्तित्व था।

---

२. आचार्य बलदेव उपाध्याय : वैदिक साहित्य और संस्कृति/पृ. ३५९।
३. पं० अजित कुमार शास्त्री : श्वेताम्बर मत सीमाक्षा/पृ.१७४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

बृहदारण्यकोपनिषद् जो बहुत प्राचीन है, उसमें भी श्रमणों का उल्लेख है—"**श्रमणोऽश्रमणस्तापसोऽतापसः।**"(४/३/२२)। अतः यास्क का श्रमणों से परिचित होना स्वाभाविक है।

श्रीमद्भागवतपुराण में भी श्रमणों को 'वातरशन' (वायु की रशना अर्थात् कौपीन धारण करनेवाला) कहा गया है—"**श्रमणा वातरशना आध्यात्मविद्या विशारदाः।**" (११/२/२०)।

५

महाभारत (५००-१०० ई० पू०) में नग्न क्षपणक

सुप्रसिद्ध संस्कृतसाहित्य-इतिहासकार बलदेव उपाध्याय 'महाभारत' की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

"आजकल महाभारत में एक लाख श्लोक मिलते हैं, इसलिए इसे 'शतसाहस्री-संहिता' कहते हैं। इसका यह स्वरूप कम से कम डेढ़ हजार वर्ष से अवश्य है, क्योंकि गुप्तकालीन शिलालेख में यह 'शतसाहस्री संहिता' के नाम से उल्लिखित हुआ है। विद्वानों का कहना है कि महाभारत का वह रूप अनेक शताब्दियों में विकसित हुआ। बहुत प्राचीनकाल से अनेक गाथाएँ तथा आख्यान इस देश में प्रचलित थे, जिनमें कौरवों तथा पाण्डवों की वीरता का वर्णन किया गया था। अथर्ववेद में परीक्षित का आख्यान उपलब्ध होता है। अन्य वैदिक ग्रन्थों में यत्र-तत्र महाभारत के वीर पुरुषों की गाथाएँ उल्लिखित मिलती हैं। इन्हीं सब गाथाओं और आख्यानों को एकत्र कर महर्षि वेदव्यास ने जिस काव्य का रूप दिया है वही आजकल का सुप्रसिद्ध महाभारत है।"[४]

"४४५ ई० (५०२ वि०) के एक शिलालेख में महाभारत का निर्देश इस प्रकार है—'**शतसाहस्र्यां संहितायां वेदव्यासेनोक्तम्।**' इससे प्रतीत होता है कि इससे कम से कम २०० वर्ष पहले इसका अस्तित्व अवश्य होगा। कनिष्क के सभापण्डित अश्वघोष ने **वज्रसूची** उपनिषद् में हरिवंश के श्लोक तथा स्वयं महाभारत के भी कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं। अश्वघोष का समय ई० सन् की प्रथम शताब्दी है। अतः उस समय यह ग्रन्थ हरिवंश के साथ लक्षश्लोकात्मक था, इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता। आश्वलायन गृह्यसूत्र (३/४/४) में **भारत** तथा **महाभारत** का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया गया है। बौधायन के गृह्यसूत्र में 'विष्णुसहस्रनाम' का स्पष्ट उल्लेख है तथा भगवद्गीता का एक श्लोक प्रमाणरूप से उद्धृत किया गया है। इन दोनों ग्रन्थकारों

---

४. बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास/पृ. ८१-८२।

की स्थिति ईस्वी के लगभग चार सौ वर्ष पहले मानी जाती है। ये दोनों ग्रन्थकार महाभारत के विस्तृतरूप से परिचित हैं, गीता को भगवान् के वचनरूप से जानते हैं, ययाति के उपाख्यान का निर्देश करते हैं। अत: स्पष्ट है कि मूल महाभारत की रचना इससे (४०० ई० पू० से) कम से कम दो सौ वर्ष पूर्व अवश्य हुई होगी। महाभारत बुद्ध के पहले की रचना है, परन्तु वर्तमान रूप उसे बुद्ध के पीछे प्राप्त हुआ, यही मानना न्यायसंगत है।''[५]

श्री बी० एन० लूनिया **प्राचीन भारतीय संस्कृति** में लिखते हैं—''मैक्डानल ने महाभारत का रचनाकाल ५०० ई० पू० और विन्टरनिट्ज ने ४०० ई० पू० माना है। श्री आर० जी० भण्डारकर का मत है कि ईस्वी पूर्व ५०० तक महाभारत एक प्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थ बन चुका था। --- महाभारत के मूलग्रन्थ में अनेक वीरगाथाओं, आख्यानों, धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों और उपदेशों को सम्मिलित कर लिया गया। समय-समय पर उसमें अनेक प्रक्षेप जोड़ दिये गये। --- महाभारत के कुछ भागों में भारत में रहनेवाली विदेशी जातियों यूनानी, शक, पह्लव आदि का उल्लेख है। ये जातियाँ भारत में ईस्वी पूर्व पहली और दूसरी शताब्दी में आयीं। इससे प्रकट होता है कि ईसापूर्व की प्रारंभिक सदियों में महाभारत के महाकाव्य में परिवर्तन और परिवर्धन हो गये थे। ईसापूर्व दूसरी शताब्दी में, पतञ्जलिकृत 'महाभाष्य' ग्रन्थ के समय में, महाभारत का वर्तमानरूप सर्वविदित था। महाभारत में विष्णु और शैवमतों का विशद विवरण है और ये मत ईसा के बाद की प्रारंभिक सदियों में खूब प्रचलित थे। गुप्तकाल में तो ये अपनी प्रगति के शिखर पर थे। भारत में और भारत के बाहर कम्बोडिया में पाँचवी और छठी शताब्दियों के शिलालेखों में महाभारत का धार्मिक ग्रन्थ के रूप में उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट है कि ईसवी सन् की पाँचवी शताब्दी के पूर्व ही महाभारत का परिवर्तन और परिवर्द्धन सम्पूर्ण हो चुका था और उसका वह रूप निर्दिष्ट हो चुका था जो आज हमारे सम्मुख प्रस्तुत है। डॉक्टर राधाकुमुद मुकर्जी का मत है कि महाभारत का यह परिवर्द्धित रूप ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी तक पूर्ण हो चुका था। अन्य विद्वान् इसे ईस्वी सन् के ३०० वर्ष पूर्व से १०० वर्ष पूर्व के युग में मानते हैं।''[६]

निष्कर्ष यह कि 'महाभारत' ई० पू० ५०० से ई० पू० १०० के बीच की रचना है। इसमें दिगम्बरजैन मुनि का वर्णन है। प्राचीनकाल में दिगम्बरजैन मुनि 'क्षपणक' नाम से प्रसिद्ध थे। 'क्षपणक' शब्द भ्वादिगण एवं चुरादिगण की 'क्षप्' धातु में 'ल्युट्' एवं स्वार्थिक 'कन्' प्रत्ययों के योग से निष्पन्न है। भ्वादिगणी 'क्षप्' धातु का अर्थ है : संयम, तप, उपवास करना (क्षप् = to be abstinent, fast, do penance—

---

५. बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास/पृ. ८३-८४।

६. बी.एन. लूनिया : प्राचीन भारतीय संस्कृति/ पृ.१५७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

M. Monier Williams : Sanskrit–English Dictionary, मनुस्मृति ५/६९, आप्टेकृत संस्कृत-हिन्दी कोश) तथा चुरादिगणी 'क्षप्' धातु का अर्थ है : फेंकना, त्यागना, नष्ट करना (to throw, क्षपण = destroying, diminishing, suppressing, expelling— M. Monier williams : Sans.–Eng. Dictionary) अतः 'क्षपणक' शब्द संयमी-तपस्वी एवं वस्त्रादि-सकलपरिग्रह-त्यागी दिगम्बरजैन मुनि का वाचक है। छठी शताब्दी ई० के दिगम्बरजैनाचार्य जोइन्दुदेव ने **परमात्मप्रकाश** के निम्न दोहे में दिगम्बरजैन मुनि के लिए 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग किया है—

तरुणउ बूढउ रूयडउ सूरउ पंडिउ दिव्वु।
खवणउ वंदउ सेवडउ मूढउ मण्णइ सव्वु॥ १/८२॥

अनुवाद—"मैं तरुण हूँ, वृद्ध हूँ, रूपवान् हूँ, शूर हूँ, पंडित हूँ, दिव्य हूँ, क्षपणक हूँ, बौद्ध हूँ और श्वेतपट (श्वेताम्बर) हूँ, इस प्रकार शरीर की समस्त अवस्थाओं को मूर्ख जीव अपनी अवस्थाएँ मानता है।"

श्वेताम्बराचार्य हेमचन्द्र (१२वीं शती ई०) ने अपने कोष में 'क्षपणक' शब्द को 'नग्न' का पर्यायवाची बतलाया है—"**नग्नो विवाससि मागधे च क्षपणके।**"

'विशेषावश्यकभाष्य' के वृत्तिकार श्री हेमचन्द्रसूरि (१२वीं सदी ई०) ने भाष्य की २५८५वीं गाथा की वृत्ति में निम्नलिखित गाथा उद्धृत की है, जिसमें दिगम्बरमुनि को नग्नक्षपणक कहा गया है—

जारिसियं गुरुलिंगं सीसेण वि तारिसेण होयव्वं।
न हि होइ बुद्धसीसो सेयवडो नग्गखवणो वा॥

अनुवाद—"जैसा गुरु का लिंग (वेश) होता है, वैसा ही शिष्य का भी होना चाहिए। बुद्ध का शिष्य श्वेतपटधारी अथवा नग्नक्षपण नहीं हो सकता।"

एक अन्य श्वेताम्बरग्रन्थ **प्रवचनपरीक्षा** में दश कुपाक्षिकों के नामों में एक 'क्षपणक' नाम भी बतलाया गया है—

खवणय पुण्णिम खरयर पल्लविआ सड्ढपुण्णिमागमिआ।
पडिमा मुणिअरि वीजा पासो पुण संपई दसमो॥ ८॥

इसकी वृत्ति में '**क्षपणको दिगम्बरः**' (प्रव.परी./१/१/८/ पृ.१९) कहकर 'क्षपणक' शब्द का अर्थ स्पष्ट किया गया है।

इसी ग्रन्थ की एक अन्य गाथा में कहा गया है कि क्षपणक स्त्रीमुक्ति का निषेध करनेवाले पुरुष को तीर्थंकर कहते हैं—"**एवं खलु तित्थयरं इत्थीमुत्तिं निसेहगं खमणा**"

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इसे संस्कृतवृत्ति में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—"**क्षपणकाः स्त्रीमुक्ति-निषेधकं तीर्थकरं भणन्ति।**"(प्रव.परी. /१/१/७१/पृ.५०)।

वैदिकपरम्परा के 'महाभारत' के अतिरिक्त अन्य धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रन्थों में भी 'क्षपणक' शब्द से 'दिगम्बरजैन मुनि' अर्थ ही लिया गया है। यथा—

१. "**यत्र क्षपणका इव दृश्यन्ते मलधारिणः**" (रुद्रसंहिता / पार्वतीखण्ड,२४/२१)।

२. "**नग्नक्षपणकादीनां** ---।" (श्रीमद्भगवतगीता / शांकरभाष्य / १८ / २२)।

३. "**क्षपणस्य वरा पूजा अर्हतो ध्यानमुत्तमम्**॥" २०॥ (पद्ममहापुराण / भूमिखण्ड)।

संस्कृतसाहित्य के चाणक्यशतक, पञ्चतन्त्र, मुद्राराक्षस, कादम्बरी, हर्षचरित, प्रबोधचन्द्रोदय आदि ग्रन्थों में दिगम्बरजैन मुनि का वर्णन क्षपणक या नग्नक्षपणक नाम से ही किया गया है। इन ग्रन्थों के उदाहरण स्वतन्त्र शीर्षकों में आगे द्रष्टव्य हैं।

जैनेतर शब्दकोशों में भी 'क्षपणक' शब्द को दिगम्बरजैन मुनि का वाचक बतलाया गया है। यथा—

१. **नग्नाटो दिग्वासाः क्षपणः श्रमणश्च जीवको जैनः।**
आजीवो मलधारी निर्ग्रन्थः कथ्यते सद्भिः॥ २/१९०॥
हलायुधकोश।

२. "**नग्नो बन्दिक्षपणयोः पुंसि त्रिषु विवाससि।**" (मेदिनीकोश / नं.१३)।

३. "**निर्ग्रन्थः क्षपणस्तथा।**" (कोषकल्पतरुः / ५३)।

४. Kshapaṇaka = a religious mendicant, (especially a) Jaina mendicant who wears no garments. (M. Monier Williams : Sans.–Eng. Dictionary, p. 326)

प्राकृत भाषाओं के विशेषज्ञ प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् **डॉ० रिचार्ड पिशल** ने अपने '**प्राकृत भाषाओं का व्याकरण**' नामक ग्रन्थ के 'विषयप्रवेश' (पृ. ३१) में लिखा है—"**प्रबोधचन्द्रोदय** के पेज ४६ से ६४ तक एक क्षपणक आया है, जो दिगम्बर जैन साधु बताया गया है।---**लटकमेलक** के पेज १२-१५ और २५ से २८ में भी एक दिगम्बर पात्र नाटक में खेल करता है, जो मागधी बोलता है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि नाटकों में सर्वत्र ये 'क्षपणक' दिगम्बर होते हैं।"

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि दिगम्बर, श्वेताम्बर और वैदिक परम्परा के साहित्यों में तथा संस्कृतसाहित्य एवं शब्दकोशों में 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग दिगम्बरजैन मुनि के अर्थ में किया गया है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

महाभारत के आदिपर्व में महर्षि उत्तङ्क की कथा में नग्न क्षपणक का उल्लेख हुआ है। अर्जुन के पौत्र और अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित युधिष्ठिर के बाद हस्तिनापुर के राजा बने। नागराज तक्षक के डसने से उनकी मृत्यु हो गई। परीक्षित के पुत्र जनमेजय पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए सम्पूर्ण सर्पजाति का विनाश करने हेतु सर्पयज्ञ करते हैं। उसमें समस्त सर्प जला दिये जाते हैं, किन्तु आस्तिक ऋषि की कृपा से तक्षक के प्राण बच जाते हैं। इस यज्ञ के कारण ही वैशम्पायन ने जनमेजय को कृष्णद्वैपायन व्यास द्वारा रचित महाभारत की रोचक कथाएँ सुनाईं। जनमेजय ने भी ब्रह्महत्या के पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए उन कथाओं को ध्यान से सुना (आदिपर्व / अध्याय १ / श्लोक ९-११ / पृ.२)।

उन कथाओं को वहाँ सूतकुलोत्पन्न लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा ने भी सुना। वे पुराणों के ज्ञाता और कथावाचक थे। वे नैमिषारण्य में महर्षि शौनक के द्वादशवर्षीय सत्र में आये। वहाँ एकत्र ऋषियों को उन्होंने महाभारत की कथा सुनाई (आदिपर्व/ अध्याय १)। इसी क्रम में वे 'वेद' के शिष्य उत्तङ्क की गुरुभक्ति की कथा सुनाते हैं। उत्तङ्क ने ही जनमेजय को सर्पयज्ञ के लिए प्रोत्साहित किया था (आदिपर्व / अध्याय ३)। कथा इस प्रकार है—

ब्रह्मर्षि उत्तङ्क अपने गुरु वेद को गुरुदक्षिणा देने के लिए गुरुपत्नी की इच्छानुसार **राजा पौष्य** की महारानी के कुण्डलयुगल माँगने जाते हैं। महारानी दे देती है, किन्तु सावधान करती है कि इन कुण्डलों पर **नागराज तक्षक** की आँखें गड़ी हुई हैं, अतः आप सावधानी से लेकर जाना। उत्तङ्क 'अब मैं चलता हूँ' कहकर राजा से बिदा लेते हैं और कुण्डल लेकर चल पड़ते हैं। रास्ते में वे अपने पीछे आते हुए एक **नग्न क्षपणक** (दिगम्बरजैन मुनि) को देखते हैं, जो कभी दिखाई देता है, कभी अदृश्य हो जाता है। कुछ दूर जाकर उत्तंक एक सरोवर के किनारे कुण्डल रख देते हैं और स्नान के लिए जल में प्रविष्ट हो जाते हैं। तभी वह क्षपणक तेजी से आता है और दोनों कुण्डल लेकर भाग जाता है। उत्तंक स्नान-तर्पण कर उस क्षपणक का पीछा करते हैं और उसे पकड़ लेते हैं। पकड़े जाने पर वह क्षपणक का रूप त्याग देता है और अपना वास्तविक (तक्षकनाग का) रूप धारण कर पृथ्वी के बहुत बड़े बिल में घुस जाता है। मूल पाठ इस प्रकार है—

''साधयामस्तावदित्युक्त्वा प्रातिष्ठतोत्तङ्कस्ते कुण्डले गृहीत्वा सोऽपश्यदथ पथि नग्नं क्षणपकमागच्छन्तं मुहुर्मुहुर्दृश्यमानमदृश्यमानं च।

अथोतङ्कस्ते कुण्डले संन्यस्य भूमावुदकार्थं प्रचक्रमे। एतस्मिन्नन्तरे स क्षपणकस्त्वरमाण उपसृत्य ते कुण्डले गृहीत्वा प्राद्रवत्।

तमुत्तङ्कोऽभिसृत्य कृतोदककार्यः शुचिः प्रयतो नमो देवेभ्यो गुरुभ्यश्च कृत्वा महता जवेन तमन्वयात्।

तस्य तक्षको दृढमासन्नः स तं जग्राह। गृहीतमात्रः स तद्रूपं विहाय तक्षकस्वरूपं कृत्वा सहसा धरण्यां विवृतं महाबिलं प्रविवेश।'' (महाभारत / आदिपर्व / तृतीय अध्याय पृ.५७)।

उपाख्यान का आशय यह है कि नागराज तक्षक ने कुण्डलों का अपहरण करने के लिए नग्न क्षपणक अर्थात् दिगम्बरजैन मुनि का रूप धारण किया था, जैसे रावण ने सीता के अपहरण के लिए साधु का वेश धारण किया था। इससे यह ध्वनित होता है कि उस समय दिगम्बरजैन मुनि लोक में आदर और श्रद्धा से देखे जाते थे। इसीलिए धूर्तलोग दूसरों को ठगने के लिए दिगम्बरजैन मुनि का वेश धारण कर लेते थे।

उत्तङ्क जनमेजय के समकालीन थे। जनमेजय परीक्षित के पुत्र, अभिमन्यु के पौत्र तथा अर्जुन के प्रपौत्र थे। इससे यह तथ्य सामने आता है कि महाभारत में वर्णित उपाख्यान उसकी रचना के पूर्व से श्रुतिपरम्परा में प्रवहमान थे। उन्हें इतिहास और पुराण कहा गया है। उनका मन्थन करके ही व्यास जी ने महाभारत की रचना की थी, जैसा कि उसमें कहा गया है—

इतिहास-पुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्।
भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिविधं कालसंज्ञितम्॥ १/१/६३॥

उत्तङ्कोपाख्यान महाभारत के आदिपर्व के पौष्यपर्व नामक तृतीय अध्याय में वर्णित है, अतः उत्तङ्क की कथा में नग्न क्षणपक का एक पात्र के रूप में वर्णन सिद्ध करता है कि जितने प्राचीन 'महाभारत' के (जनमेजय, नागराज तक्षक, ब्रह्मर्षि उत्तंक, महाराज पौष्य आदि)पात्र हैं, उनसे भी अधिक प्राचीन दिगम्बरजैन मुनियों (नग्न क्षपणकों) की परम्परा है, तभी तत्कालीन समाज में वे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह महाव्रतधारी विश्वसनीय साधुओं के रूप में प्रसिद्ध और सुपरिचित थे, जिसके कारण तक्षक उत्तंक को ठगने के लिए दिगम्बरजैन मुनि का रूप धारण करता है और उत्तंक उसे वास्तव में दिगम्बरजैन मुनि समझ कर कुण्डलों के अपहरण से शंकित नहीं होते और आश्वस्त होकर उन्हें सरोवर के किनारे पर रखकर स्नान के लिए जल में प्रविष्ट हो जाते हैं।

यतः उत्तङ्क **परीक्षितपुत्र जनमेजय** के समकालीन थे, अतः वे **द्वापरयुग** में विद्यमान थे। हिन्दूमतानुसार सृष्टिकाल चार युगों में विभाजित किया गया है : **सत्**

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

या कृतयुग (अवधि १७,२८,००० वर्ष), **त्रेता** (१२,९६,००० वर्ष), **द्वापर** (८,६४,००० वर्ष) और **कलियुग** (४,३२,००० वर्ष)। वर्तमानयुग कलियुग है। (वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत-हिन्दीकोश/'युगम्')। **कलियुग का आरम्भ ईसापूर्व ३१०२ वर्ष की १३ फरवरी को हुआ था** (वही/संस्कृत-हिन्दी-कोश/'कलिः')। इस कालगणना के अनुसार सिद्ध होता है कि **दिगम्बर जैन मुनियों का अस्तित्व द्वापरयुग में अर्थात् आज से लगभग आठ लाख चौसठ हजार वर्ष के पूर्व भी था।**

तथा महाभारत में नग्न क्षपणक के उल्लेख से सिद्ध होता है कि दिगम्बरजैन-परम्परा का अस्तित्व 'महाभारत' के रचनाकाल (५००ई.पू. से १००ई.पू.) से भी प्राचीन है।

तत्त्वनिर्णयप्रासाद ग्रन्थ के लेखक श्वेताम्बराचार्य मुनि श्री **विजयानन्दसूरीश्वर 'आत्माराम'** जी (वि० सं० १९१४ के लगभग) ने भी उक्त कथा के आधार पर जैनधर्म को **वेदव्यास** जी के जन्म से पूर्ववर्ती प्रतिपादित किया है। किन्तु, उन्होंने **नग्नक्षपणक** को दिगम्बरजैन मुनि न मानकर श्वेताम्बर जिनकल्पिक मुनि माना है, क्योंकि वे भी नग्न रहते थे। पर उनका यह मत पूर्वोद्धृत प्रमाणों के विरुद्ध है। पूर्व में दिगम्बर-साहित्य, श्वेताम्बरसाहित्य, वैदिकसाहित्य, संस्कृतसाहित्य तथा शब्दकोशों से जो उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं, उनसे स्पष्ट है कि भारत के सभी धार्मिक सम्प्रदायों में 'क्षपणक' शब्द दिगम्बरजैन मुनियों के लिए ही प्रसिद्ध था। उपर्युक्त सम्प्रदायों के साहित्य तथा संस्कृतसाहित्य में **क्षपणकों को मयूरपिच्छसहित तथा 'धर्मवृद्धि' का आशीर्वाद देते हुए** चित्रित किया गया है, जो केवल दिगम्बरजैन मुनि के लक्षण हैं। इससे उपर्युक्त तथ्य में सन्देह के लिए रंचमात्र भी स्थान नहीं रहता। इसकी विस्तार से चर्चा आगे की जायेगी।

६

चाणक्यशतक (४०० ई० पू०) में नग्नक्षपणक

यह नीति के पद्यों का ग्रन्थ है। इसके रचयिता चाणक्य हैं, जो ई० पू० चतुर्थ शताब्दी में सम्राट् चन्द्रगुप्त के प्रधानमंत्री थे। उन्होंने अपने शतक के ११०वें श्लोक में लिखा है—**'नग्नक्षपणके देशे रजकः किं करिष्यति'** (आप्टे-कृत संस्कृत-हिन्दी कोश/पृ. ३१५) अर्थात् जिस देश में नग्नक्षपणक ही रहते हों, वहाँ धोबी का क्या काम? इससे भी सिद्ध होता है कि ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी में दिगम्बरजैनमुनि-परम्परा विद्यमान थी।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

७

पंचतन्त्र (३०० ई०) में नग्नक, क्षपणक, दिगम्बर, धर्मवृद्धि

सुप्रसिद्ध संस्कृतसाहित्य-इतिहासकार पं० बलदेव उपाध्याय लिखते हैं—''पंचतंत्र की कहानियाँ बड़ी प्राचीन हैं। **बृहत्कथा** (तीसरी शताब्दी) तथा **तन्त्राख्यायिका** के रूप में उसका मौलिक रूप आज भी हमारे मनन के लिए विद्यमान है। --- ऐतिहासिक तथ्य यह है कि जब षष्ठ शतक में भारत का तथा फारस का घनिष्ठ सम्बन्ध था, तब इन रोचक तथा उपदेशप्रद कथाओं की ओर फारस के न्यायी बादशाह **खुशरो नौशेरवाँ** (५३१ ई०-५७९ ई०) की दृष्टि आकृष्ट हुई। इसके दरबारियों में एक संस्कृत के ज्ञाता हकीम थे, उनका नाम था **बुरजोई**। इन्हीं हकीम सा० ने पहले-पहल पञ्चतन्त्र का प्रथम अनुवाद पहलवी (प्राचीन फारसी) भाषा में ५३३ ई० में किया था।''(संस्कृत-साहित्य का इतिहास / पृ. ४२४-४२५)।

पंचतंत्र के सबसे प्राचीन संस्करण में कौटिल्य के अर्थशास्त्र को उद्धृत किया गया है, अत: इसके रचनाकाल की पूर्व सीमा तीसरी शताब्दी ई. पू. कही जा सकती है। हर्टेल पंचतंत्र के प्राचीनतम संस्करण का रचनाकाल दूसरी शती ई० पू० मानते हैं। विंटरनित्स ने पंचतंत्र के वर्तमान स्वरूप का निर्माणकाल ३००-४०० ई० के आसपास माना है, पर वे यह भी स्वीकार करते हैं कि अपने मूल रूप में यह ग्रन्थ इससे पहले अस्तित्व में आ चुका था।[७]

पंचतंत्र के 'अपरीक्षित कारक' में पहली ही कथा मणिभद्र श्रेष्ठी की है जो नग्न क्षपणकों पर आधारित है। मणिभद्र सेठ निर्धन हो जाता है और निर्धनता से दु:खी होकर आत्महत्या का निश्चय कर सो जाता है। स्वप्न में उसके पूर्वपुरुषों द्वारा उपार्जित पद्मनिधि क्षपणकरूप में दर्शन देकर कहती है—''तुम निराश मत होओ। मैं सुबह इसी रूप में तुम्हारे घर आऊँगी। तुम मेरे सिर पर लाठी से प्रहार करना, मैं स्वर्ण बन जाऊँगी। उसे तुम रख लेना।'' सुबह ऐसा ही हुआ। क्षपणक प्रकट हुआ और सेठ ने उस पर लाठियों से प्रहार किया। वह स्वर्ण बन गया। सेठ ने उठाकर उसे घर में रख लिया। सेठ की पत्नी ने इस घटना के पूर्व एक नाई को पैर धोने के लिए बुलाया था। उसने यह सारी घटना देख ली। सेठ ने उसे धन और वस्त्र देकर सन्तुष्ट किया और कहा कि तुम यह बात किसी से न कहना।

नाई घर जाकर सोचने लगा कि ये नग्न क्षपणक सिर पर लाठियों का प्रहार करने से स्वर्ण बन जाते हैं। इसलिए मैं भी ऐसा ही करूँगा। प्रात: वह क्षपणकविहार में जाकर प्रधानक्षपणक को 'नमोऽस्तु' निवेदित कर प्रार्थना करता है कि ''आज आप

---

७. डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी : संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास / पृ.३४५-३४६।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

समस्त मुनियों सहित आहार के लिए मेरे घर पधारें।'' प्रधान क्षपणक ने कहा—''हम ब्राह्मणों के समान आमंत्रण करने पर नहीं आते। आहार के समय श्रावकों की बस्ती में जाते हैं और जो श्रावक भक्तिपूर्वक हमारी अभ्यर्थना करता है, उसी के यहाँ आहार ग्रहण करते हैं।'' नाई ने कहा—''यह बात मैं जानता हूँ, लेकिन मैंने पुस्तकों के आच्छादन योग्य बहुमूल्य वस्त्र इकट्ठे कर रखे हैं और पुस्तकों का लेखन कराने के लिए लेखकों को देने हेतु धन भी संचित करके रखा है। इसलिए आप कालोचित कार्य करें।'' यह कहकर नाई चला गया और घर में एक खैर का लट्ठ तैयार कर किवाड़ों के पीछे छिपा दिया। उसके बाद वह पुनः विहार गया और जब वे क्षपणक आहारचर्या के लिए विहार से निकल रहे थे, तब उनसे अपने घर चलने के लिए बड़ी मिन्नतें करने लगा। वे क्षपणक भी वस्त्र और धन के लोभ में अन्य भक्त श्रावकों को छोड़कर उसके घर चल गये। ज्यों ही वे नाई के घर में प्रविष्ट हुए, नाई ने किवाड़ बन्द कर दिये और मुनियों के सिर पर लट्ठ मारने लगा। कुछ मुनि तत्काल मर गये और कुछ चीत्कार करते हुए इधर-उधर भागने लगे। चीत्कार सुनकर सिपाही आये और सारा वृत्तान्त जानकर नाई को पकड़कर ले गये और उसे शूली पर चढ़ा दिया। कथा का आवश्यक **संस्कृतपाठ** नीचे दिया जा रहा है—

''नापितोऽपि स्वगृहं गत्वा व्यचिन्तयत्-नूनमेते सर्वेऽपि **नग्नकाः** शिरसि दण्डहताः काञ्चनमया भवन्ति। तदहमपि प्रातः प्रभूतानाहूय लगुडैः शिरसि हन्मि, येन प्रभूतं हाटकं मे भवति। एवं चिन्तयतो महता कष्टेन निशा अतिचक्राम। अथ प्रभाते अभ्युत्थाय बृहल्लगुडमेकं प्रगुणीकृत्य **क्षपणकविहारं** गत्वा जिनेन्द्रस्य प्रदक्षिणत्रयं विधाय जानुभ्यामवनिं गत्वा वक्त्रद्वार-न्यस्तोत्तरीयाञ्चलस्तारस्वरेणेमं श्लोकमपठत्—

जयन्ति ते जिना येषां केवलज्ञानशालिनाम्।
आजन्मनः स्मरोत्पत्तौ मानसेनोषरायितम्॥

सा जिह्वा या जिनं स्तौति तच्चित्तं यज्जिने रतम्।
तावेव च करौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ॥

एवं संस्तुत्य ततः **प्रधानक्षपणकमासाद्य क्षितिनिहितजानुचरणः 'नमोऽस्तु , वन्दे' इत्युच्चार्य लब्धधर्मवृद्ध्याशीर्वादः** मुखमालिकानुग्रहलब्धव्रतादेशः उत्तरीयनिबद्धग्रन्थिः सप्रश्रयमिदमाह—''भगवन् अद्य विहरणक्रिया समस्तमुनिसमेतेनास्मद्गृहे कर्त्तव्या।'' स आह—''भोः श्रावक! धर्मज्ञोऽपि किमेवं वदसि? किं वयं ब्राह्मणसमानाः यद् आमन्त्रणं करोषि? **वयं सदैव तत्कालपरिचर्यया भ्रमन्तो भक्तिभाजं श्रावकमवलोक्य तस्य गृहे गच्छामः। तेन कृच्छ्रादभ्यर्थितास्तद्गृहे प्राणधारणमात्रामशनक्रियां कुर्मः।** तद् गम्यताम्। नैवं भूयोऽपि वाच्यम्।''

तच्छ्रुत्वा नापितमाह—"भगवन्! वेद्म्यहं युष्मद्धर्मम्। परं भवतो बहुश्रावका आह्वयन्ति। साम्प्रतं पुनः पुस्तकाच्छादनयोग्यानि कर्पटानि बहुमूल्यानि प्रगुणीकृतानि। तथा पुस्तकानां लेखनाय लेखकानां च वित्तं सञ्चितमास्ते। तत्सर्वथा कालोचित्तं कार्यम्।" ततो नापितोऽपि स्वगृहं गतः। तत्र च गत्वा खदिरमयं लगुडं सज्जीकृत्य कपाटयुगलं द्वारि समाधाय सार्धप्रहरैकसमये भूयोऽपि विहारद्वारमाश्रित्य सर्वान् क्रमेण निष्क्रामतो गुरुप्रार्थनया स्वगृहमानयत्। तेऽपि सर्वे कर्पटवित्तलोभेन परिचितान् श्रावकान् परित्यज्य प्रहृष्टमनसस्तस्य पृष्ठतो ययुः। अथवा साध्विदमुच्यते—

एकाकी गृहसन्त्यक्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
सोऽपि संवाह्यते लोके तृष्णया पश्य कौतुकम्॥"

(पञ्चतन्त्र / अपरीक्षितकारक)

पंचतंत्र की इस कथा से ज्ञात होता है कि ईसा की तीसरी शताब्दी में जैनेतर सम्प्रदाय के लोग भी दिगम्बरजैन मुनियों के प्रति प्रदर्शित किये जानेवाले विनयोपचार, उनके द्वारा दिये जानेवाले आशीर्वाद के प्रकार एवं उनकी आहारचर्या की पद्धति से सुपरिचित थे, जो इस बात का प्रमाण है कि दिगम्बरजैन मुनिपरम्परा ईसा की तीसरी शताब्दी से भी बहुत पहले अस्तित्व में थी।

८

भासकृत 'अविमारक' (३०० ई०) में वस्त्रविहीन श्रमण

महाकवि भास संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटककार हैं। ये कालिदास के पूर्ववर्ती हैं, क्योंकि कालिदास ने अपने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में इनका उल्लेख किया है। ए० बी० कीथ कालिदास का समय ४०० ई० के लगभग मानते हैं, अतः उनके अनुसाार भास ३०० ई० के लगभग विद्यमान थे। किन्तु डॉ० बलदेव उपाध्याय ने अन्तरंग और बहिरंग प्रमाणों के आधार पर कहा है कि भास का समय पंचम या चतुर्थ शती विक्रमपूर्व मानना न्यायोचित है।[८] डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी, टी० गणपति शास्त्री, म० म० हरप्रसाद शास्त्री तथा ए० डी० पुसालकर द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों के आधार पर भास की स्थिति ईसा से चार या पाँच शताब्दी पूर्व युक्तिसंगत मानते हैं।[९]

भास ने अपने नाटक 'अविमारक' में नग्न श्रमण का उल्लेख किया है। विदूषक नलिनिका से कहता है—

८. संस्कृतसाहित्य का इतिहास / पृ.४९१-४९४।
९. संस्कृतसाहित्य का अभिनव इतिहास / पृ.१२७-१२८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"आम् भोदि! जण्णोपवीदेण बम्हणो, चीवरेण रत्तपडो। जदि वत्थं अवणेमि समणओ होमि।" (पंचम अंक / पृष्ठ १४३)।

अनुवाद—"हाँ, देवि! मैं यज्ञोपवीत धारण करने से ब्राह्मण हूँ, चीवर पहन लूँ तो रक्तपट (बौद्ध) हो जाऊँगा और यदि वस्त्र उतार दूँ तो श्रमण बन जाऊँगा।"

इससे स्पष्ट होता है कि भास के युग में दिगम्बरजैन मुनियों का अस्तित्व था। इतना ही नहीं, उनके समय में दिगम्बरजैन मुनि ही 'श्रमण' शब्द से प्रसिद्ध थे और उनके विषय में यह भी स्पष्ट था कि वे अवैदिक थे। यह द्वितीय अंक (पृ. ३०) में चेटी और विदूषक के निम्नलिखित संवाद से ज्ञात होता है। विदूषक से परिहास करते हुए चेटी कहती है कि मैं भोजन का निमंत्रण देने के लिए किसी ब्राह्मण को ढूँढ़ रही हूँ। तब विदूषक, जो कि ब्राह्मण है, कहता है—"**भोदि! अहं को समणओ?**" (देवि! मैं क्या श्रमण हूँ?)। चेटी परिहास में कहती है—"**तुवं किल अवेदिओ**" (हाँ, तुम अवैदिक हो)।

इस प्रकार यदि भास का समय ई० पू० चतुर्थ शताब्दी माना जाय, तो दिगम्बरमुनियों का अस्तित्व उसके पूर्व से सिद्ध होता है और यदि तृतीय शताब्दी ई० स्वीकार किया जाय, तब भी यह सिद्ध होता है कि उनकी परम्परा इसके पूर्व से चली आ रही थी और ऋग्वेद तथा महाभारत के उल्लेखों से सिद्ध है कि वह ईसापूर्व-शताब्दियों से प्रवहमान थी।

९

मत्स्यपुराण (३०० ई०) में निष्कच्छ, निर्ग्रन्थ, नग्न

डॉ० रामचन्द्र जी तिवारी ने बतलाया है कि मत्स्यपुराण प्राचीनतम पुराण माना जाता है, क्योंकि केवल इसी में २३६ ई० के आन्ध्रराजवंश का वर्णन है, गुप्तवंश का इसमें उल्लेख नहीं है।[१०]

इस पुराण में जिनधर्म को विनाश का कारण सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित कथा गढ़ी गई है। राजा रजि के पुत्रों ने इन्द्र का साम्राज्य छीन लिया। तब उसने वृहस्पति के पास जाकर प्रार्थना की, कि मुझे मेरा राज्य वापिस दिलाने के लिए कुछ उपाय कीजिए। वृहस्पति ने ग्रहशान्तिविधान तथा पौष्टिक कर्म करके इन्द्र को बलवान् तथा साहसी बना दिया और रजिपुत्रों के पास जाकर उन्हें मोहित कर जैनधर्मावलम्बी बना दिया, जिससे वे वेदत्रयी से च्युत होकर विनाश के योग्य हो गये। तब इन्द्र

---

१०. कालिदास की तिथि संशुद्धि / पृ.२१२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ने वज्रप्रहार से उन्हें मार डाला।[११] इस कथा से जैनधर्म अतिप्राचीन सिद्ध होता है।

कलियुग के दोष बतलाते हुए मत्स्यपुराण (अध्याय १४४) में कहा गया है कि इस युग में राजा लोग अधिकांशतः शूद्रयोनि के होते हैं और काषायवस्त्रधारी (बौद्ध), निष्कच्छ (नग्न) तथा कापालिक आदि पाषण्डियों की प्रवृत्तियाँ बढ़ जाती हैं—

राजानः शूद्रभूयिष्ठाः पाषण्डानां प्रवृत्तयः।
काषायिणश्च निष्कच्छास्तथा कापालिनश्च ह॥ १४४/४०॥

मत्स्यपुराण की अन्य प्रतियों में 'काषायिणश्च' के स्थान में 'नग्नास्तथा च' एवं 'निष्कच्छाः' के स्थान में 'निर्ग्रन्थाः'[१२] पाठ मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि तीसरी शती ई० के पूर्वार्ध में निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के नग्न साधु विद्यमान थे।

१०

विष्णुपुराण (३००-४०० ई०) में नाभि, मेरुदेवी, ऋषभ, भरत, नग्न, दिगम्बर, बर्हिपिच्छधर, आर्हत, अनेकान्तवाद

श्री आर० सी० हाजरा ने पुराणों पर महत्त्वपूर्ण शोध कार्य किया है। उन्होंने विष्णुपुराण का रचनाकाल तीसरी-चौथी शताब्दी ई० बतलाया है।[१३] इसमें मौर्य और नंद राजाओं का विवरण है, गुप्तकालीन राजाओं के नाम नहीं है। पुराणों में प्राचीनता और धर्म तथा दर्शन के निरूपण की प्रामाणिकता के कारण विष्णुपुराण का निर्विवाद महत्त्व है।[१४] इसके द्वितीय अंश में आद्य जैन तीर्थंकर ऋषभ, उनके माता-पिता नाभि एवं मरुदेवी तथा पुत्र भरत का वर्णन किया गया है और तृतीय अंश में जैन और बौद्ध सम्प्रदायों का विवरण है।

१०.१. भगवान् ऋषभदेव प्रथम मनु स्वायंभुव के पाँचवें वंशज

विष्णुपुराण (अंश २/अध्याय १) के निम्नलिखित श्लोकों में प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव को १.स्वायंभुव मनु, २.प्रियव्रत, ३.आग्नीध्र, ४.नाभि एवं

---

११. गत्वाऽथ मोहयामास रजिपुत्रान्बृहस्पतिः।
जिनधर्मं समास्थाय वेदबाह्यं स वेदवित्॥ २४/४७॥
वेदत्रयीपरिभ्रष्टांश्चकार धिषणाधिपः।
वेदबाह्यान् परिज्ञाय हेतुवादसमन्वितान्॥ २४/४८॥
जघान शक्रो वज्रेण सर्वान्धर्मबहिष्कृतान्॥ २४/४९॥

१२. मत्स्यपुराण/पा.टि./१४४/४०/पृ.७११।

१३. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी : संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास/पृ.७७।

१४. वही/पृ.८१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

५. ऋषभ, इस क्रम से स्वायंभुव नामक प्रथम मनु की पाँचवीं पीढ़ी[१५] में उत्पन्न बतलाया गया है—

श्रीमैत्रेय उवाच—

प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायम्भुवस्य यौ।
तयोरुत्तानपादस्य ध्रुवः पुत्रस्त्वयोदितः॥ २/१/३॥

प्रियव्रतस्य नैवोक्ता भवता द्विज! सन्ततिः।
तामहं श्रोतुमिच्छामि प्रसन्नो वक्तुमर्हसि॥ २/१/४॥

श्रीपराशर उवाच—

कर्दस्यात्मजां कन्यामुपयेमे प्रियव्रतः।
सम्राट् कुक्षिश्च तत्कन्ये दशपुत्रास्तथाऽपरे॥ २/१/५॥

महाप्रज्ञा महावीर्या विनीता दयिता पितुः।
प्रियव्रतसुताः ख्यातास्तेषां नामानि मे शृणु॥ २/१/६॥

आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा।
मेधा मेधातिथिर्भव्यः सवनः पुत्र एव च॥ २/१/७॥

ज्योतिष्मान्दशमस्तेषां सत्यनामा सुतोऽभवत्।
प्रियव्रतस्य पुत्रास्ते प्रख्याता बलवीर्यतः॥ २/१/८॥

मेधाग्निबाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः।
जातिस्मरा महाभागा न राज्याय मनो दधुः॥ २/१/९॥

निर्मलाः सर्वकालन्तु समस्तार्थेषु वे मुने।
चक्रुः क्रियां यथान्यायमफलाकांक्षिणो हिते॥ २/१/१०॥

प्रियव्रतो ददौ तेषां सप्तानां मुनि सत्तम!
सप्तद्वीपानि मैत्रेय! विभज्य सुमहात्मनाम्॥ २/१/११॥

जम्बूद्वीपं महाभाग! साग्नीध्राय ददौ पिता।
मेधातिथेस्तथा प्रादात्प्लक्षद्वीपं तथापरम्॥ २/१/१२॥

शाल्मले च वपुष्मन्तं नरेन्द्रमभिषिक्तवान्।
ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान्प्रभुः॥ २/१/१३॥

द्युतिमन्तं च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत्।
शाक द्वीपेश्वरं चापि भव्यं चक्रे प्रियव्रतः॥ २/१/१४॥

१५. श्रीमद्भागवतमहापुराण / स्कन्ध ५ / अध्याय १-४ में भी इसी क्रम से भगवान् ऋषभदेव को स्वायंभुवमनु की पाँचवीं पीढ़ी में उत्पन्न दर्शाया गया है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पुष्कराधिपतिं चक्रे सवनं चापि स प्रभुः।
जम्बूद्वीपेश्वरो यस्तु आग्नीध्रो मुनिसत्तम॥ २/१/१५॥

तस्य पुत्रा बभूवस्ते प्रजापतिसमा नव।
नाभिः किम्पुरुषश्चैव हरिवर्ष इलावृतः॥ २/१/१६॥

रम्यो हिरण्वान् षष्ठश्च कुरुर्भद्राश्व एव च।
केतुमालस्तथैवान्यः साधुचेष्टोऽभवन्नृपः॥ २/१/१७॥

जम्बूद्वीप विभागांश्च तेषां विप्र! निशामय।
पित्रा दत्तं हिमाह्वं तु वर्ष नाभेस्तु दक्षिणम्॥ २/१/१८॥

हिमाह्वयं तु वै वर्षं नाभेरासीन्महात्मनः।
तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो मेरुदेव्यां महाद्युतिः॥ २/१/२७॥

ऋषभाद्भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशतस्य सः।
कृत्वा राज्यं स्वधर्मेण तथेष्ट्वा विविधान्मखान्॥ २/१/२८॥

अभिषिच्य सुतं वीरं भरतं पृथिवीपतिः।
तपसे स महाभागः पुलहस्याश्रमं ययौ॥ २/१/२९॥

वानप्रस्थविधानेन तत्रापि कृतनिश्चयः।
तपस्तेपे यथान्यायमियाज स महीपतिः॥ २/१/३०॥

तपसा कर्षितोऽत्यर्थं कृशो धमनिसन्ततः।
नग्नो वीटां मुखे कृत्वा वीराध्वानं ततो गतः॥ २/१/३१॥

ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते।
भरताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम्॥ २/१/३२॥

अनुवाद

श्री मैत्रेय बोले—

"(हे भगवन्!) स्वायम्भुवमनु के जो प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र थे, उनमें उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव के विषय में तो आपने बतला दिया, किन्तु हे द्विज! आपने प्रियव्रत की सन्तान के विषय में कुछ भी नहीं कहा। मैं उसके बारे में सुनना चाहता हूँ, अतः आप प्रसन्न होकर कहिए।"

श्री पराशर बोले—

"प्रियव्रत ने कर्दम की पुत्री से विवाह किया था। उससे उनके सम्राट् और कुक्षि नाम की दो कन्याएँ तथा दस पुत्र हुए। प्रियव्रत के पुत्र बड़े बुद्धिमान्, बलवान्,

विनयसम्पन्न और माता-पिता के अत्यन्त प्रिय थे। उनके नाम सुनिये, वे इस प्रकार हैं—आग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान् मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन, पुत्र और ज्योतिष्मान्। प्रियव्रत के ये पुत्र अपने बल-पराक्रम के कारण विख्यात थे। इनमें मेधा, अग्निबाहु और पुत्र, ये तीन योगपरायण तथा अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त जाननेवाले थे। इनकी रुचि राज्य में नहीं थी। ये निर्मलचित्त, कर्मफल की इच्छा से रहित तथा समस्त विषयों में न्यायानुकूल प्रवृत्ति करनेवाले थे।

"हे मुनिश्रेष्ठ! राजा प्रियव्रत ने अपने शेष सात सुमहात्मा पुत्रों को सात द्वीप बाँट दिये। आग्नीध्र को जम्बूद्वीप और मेधातिथि को प्लक्ष नाम का दूसरा द्वीप दिया, शाल्मलीद्वीप में वपुष्मान् को अभिषिक्त किया, ज्योतिष्मान् को कुशद्वीप का राजा बनाया, द्युतिमान् को क्रौञ्चद्वीप का शासन सौंपा, भव्य को शाकद्वीप का स्वामित्व प्रदान किया और सवन को पुष्करद्वीप का अधिपति बनाया।

"हे मुनिसत्तम! उनमें जो जम्बूद्वीप के अधीश्वर आग्नीध्र थे, उनके प्रजापति के समान नौ पुत्र हुए : **नाभि,** किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्वान्, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल। हे विप्र! अब उनके लिए जम्बूद्वीप के जो विभाग किये गये, उन्हें सुनो। पिता (आग्नीध्र) ने दक्षिण की ओर का हिमवर्ष (जिसे अब भारतवर्ष कहते हैं) नाभि को दिया।---

"जिन नाभि को **हिमवर्ष** दिया गया था, उनके मरुदेवी से महाद्युतिमान् **ऋषभ** नामक पुत्र हुए। ऋषभ के सौ पुत्र हुए, जिनमें **भरत** ज्येष्ठ थे। पृथिवीपति ऋषभदेव ने धर्मपूर्वक राज्यशासन किया तथा विविध यज्ञ सम्पन्न किये, पश्चात् अपने वीर पुत्र भरत का राज्यभिषेक कर तप करने के लिए **पुलहाश्रम** चले गये। उन्होंने वहाँ भी वानप्रस्थविधि से रहते हुए तप एवं यज्ञानुष्ठान किये। तप से सूखकर वे इतने कृश हो गये कि शरीर की धमनियाँ दिखायी देने लगीं। अन्त में अपने मुख में एक पत्थर की बटिया रखकर **नग्नावस्था** में प्रव्रजित हो गये।"

"यतः पिता ऋषभदेव ने वन जाते समय अपने **हिमवर्ष** का राज्य भरत को प्रदान किया था, अतः तब से यह हिमवर्ष **भारतवर्ष** के नाम से प्रसिद्ध हुआ।"[१६]

'मनुस्मृति' (१/६३) में मनुओं की संख्या चौदह[१७] बतलायी गयी है। उनमें स्वायंभुव मनु प्रथम मनु थे। मनुस्मृति (१/७९) के अनुसार एक मनु का काल (मन्वन्तर)

---

१६. लिंगपुराण (४७/१९-२५) एवं श्रीमद्भागवतमहापुराण (५/४/ वाक्य ८-९) में भी भगवान् ऋषभदेव के ज्येष्ठपुत्र भरत के नाम से ही 'भारतवर्ष' नाम प्रचलित होने का वर्णन है।

१७. १. स्वायंभुव, २.स्वारोचिष, ३.औत्तमि, ४.तामस, ५.रैवत, ६.चाक्षुष, ७.वैवस्वत, ८.सावर्णि, ९.दक्षसावर्णि, १०.ब्रह्मसावर्णि, ११.धर्मसावर्णि, १२.रुद्रसावर्णि, १३. रौच्यदैवसावर्णि, और १४.इन्द्रसावर्णि। (वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत-हिन्दी कोश / 'मनुः')।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मनुष्यों के तेतालीस लाख, बीस हजार (४३,२०,०००) वर्षों का होता है। इसी को ब्रह्मा का १/१४ दिन मानते हैं, क्योंकि इस प्रकार के १४ कालों का योग ब्रह्मा का एक पूरा दिन होता है। इन चौदह कालों में से प्रत्येक का अधिष्ठातृ-मनु पृथक्-पृथक् है। इस प्रकार के छह काल बीत चुके हैं। इस समय हम सातवें मन्वन्तर में रह रहे हैं।[१८] इससे फलित होता है कि वैदिक (हिन्दू) शास्त्रों के अनुसार प्रथम स्वायंभुव-मन्वन्तर में उत्पन्न प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव आज से लगभग (४३,२०,०००×६=२,५९,२०,०००) ढाई करोड़ वर्ष पहले हुए थे। वे **वातरशन-श्रमणधर्म** (दिगम्बरमुनिधर्म) के उपदेशक थे।[१९] इससे सिद्ध होता है कि दिगम्बर जैन-परम्परा वैदिक मान्यता के अनुसार भी कम से कम ढाई करोड़ वर्ष प्राचीन है।

१०.२. दिगम्बरजैनधर्म विष्णुपुराणकार के समय से अतिप्राचीन

यद्यपि विष्णुपुराणकार ने लिखा है कि ऋषभदेव नग्नावस्था में प्रव्रजित हुए थे, तथापि वे इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि ऋषभदेव ही जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर थे अथवा यदि वे इस तथ्य को जानते थे, तो उन्होंने जानबूझकर इसकी उपेक्षा की है और वैदिक धर्म के अतिरिक्त अन्य भारतीय धर्मों को अधर्म सिद्ध करने के लिए जैनधर्म और बौद्धधर्म को 'मायामोह' अर्थात् अज्ञान या अविद्या-जनित दर्शाते हुए अपने अनुयायियों की रक्षा करने में असमर्थ बतलया है। विष्णुपुराण (अंश ३/अध्याय १६,१७,१८) में मुनि पराशर और शिष्य मैत्रेय के संवाद द्वारा जैनधर्म, बौद्धधर्म और चार्वाकमत की उत्पत्ति इस प्रकार बतलायी गयी है—

पराशर मुनि मैत्रेय को गृहस्थ के सदाचार का उपदेश देते हुए कहते हैं कि नपुंसक, अपविद्ध (सत्पुरुषों द्वारा बहिष्कृत), चाण्डाल, श्वान, नग्न, रजस्वला स्त्री आदि की दृष्टि पड़ जाने पर देवगण तथा पितृगण श्राद्ध में अपना भाग नहीं लेते, अतः किसी घिरे हुए स्थान में श्राद्धकर्म करना चाहिए।[२०] इस पर मैत्रेय प्रश्न करते हैं—"भगवन्! अपविद्ध और रजस्वला आदि को तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ , किन्तु यह नहीं जानता कि 'नग्न' किसे कहते हैं? अतः आप यही बतलाइये कि नग्न कौन कहलाता है?" तब मुनि पराशर उत्तर देते हैं— "हे द्विज! सभी वर्णों की नग्नता को ऋक्, साम और यजुः, यह वेदत्रयी आवृत करती है, अतः जो पुरुष मोह से इसका त्याग कर देता है, वह 'नग्न' संज्ञा प्राप्त करता है"—

---

१८. देखिए , वही।

१९. देखिये, अगला शीर्षक १५ 'भागवतपुराण (६०० ई.) में वातरशन श्रमण, गगनपरिधान।'

२०. विष्णुपुराण / अंश ३ / अध्याय १६ / श्लोक १२-१४।

ऋग्यजुस्सामसंज्ञेयं त्रयी वर्णावृतिर्द्विज।
एतामुज्झति यो मोहात्स नग्नः पातकी द्विजः॥ ३/१७/५॥

इसके बाद पराशर मुनि मैत्रेय को 'नग्न' के विषय में वह बात सुनाते हैं, जो पराशर मुनि के पितामह वशिष्ठ ने भीष्म से कही थी। वे कहते हैं कि पूर्वकाल में किसी समय सौ दिव्य वर्ष तक देवों और असुरों में युद्ध हुआ। उसमें 'ह्राद' आदि दैत्यों द्वारा देवगण पराजित हुए। तब उन्होंने भगवान् विष्णु की स्तुति की। उससे प्रसन्न होकर उन्होंने दर्शन दिये। देवों ने भगवान् से प्रार्थना की, कि 'ह्राद' प्रभृति दैत्यों ने ब्रह्माजी की आज्ञा का भी उल्लंघन कर हमारे और त्रिलोकी के यज्ञभाग का अपहरण कर लिया है। वे वर्णधर्म का पालन करनेवाले, वेदमार्गावलम्बी एवं तपोनिष्ठ हैं, अतः हमारे द्वारा उनका वध नहीं हो सकता। इसलिए भगवन्! ऐसा कोई उपाय बतलाइये कि हम उनका वध करने में समर्थ हों। उनके ऐसा कहने पर भगवान् विष्णु ने अपने शरीर से **मायामोह** को उत्पन्न किया और देवताओं को देकर कहा कि यह मायामोह उन सम्पूर्ण दैत्यों को मोहित कर देगा, जिससे वे वेदमार्ग से च्युत हो जावेंगे। तब तुम उनके वध में समर्थ हो जाओगे।[२१]

मायामोह देवों के साथ नर्मदा तट पर गया, जहाँ असुरगण तपस्या कर रहे थे। उसने दिगम्बरजैन मुनि का रूप धारण किया अर्थात् नग्नशरीर, मुण्डितकेश और हाथ में मयूरपिच्छी लिये हुए प्रकट हुआ और असुरों से बोला-"हे दैत्यपतियो! आप लोग लौकिक फल की इच्छा से तप कर रहे हैं या पारलौकिक?"—

ततो दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपिच्छधरो द्विज।
मायामोहोऽसुरान् श्लक्ष्णमिदं वचनमब्रवीत्॥ ३/१८/२॥

हे दैत्यपतयो ब्रूत यदर्थं तप्यते तपः।
ऐहिकं वाथ पारत्र्यं तपसः फलमिच्छथ॥ ३/१८/३॥

असुर बोले—"हम लोग पारलौकिक फल की कामना से तप कर रहे हैं।" तब दिगम्बरजैन-मुनिवेशधारी मायामोह ने अनेक प्रकार के युक्तिमय उपदेश देकर उन्हें वैदिक मार्ग से च्युत कर दिया। वे उपदेश इस प्रकार थे-"यह धर्म का कारण है और अकारण भी है, यह सद् भी है और असद् भी, यह मुक्ति का मार्ग है और नहीं भी है, यह परमार्थ है और अपरमार्थ भी है, यह कर्त्तव्य भी है और अकर्त्तव्य भी, यह ऐसा ही है और ऐसा नहीं भी है, यह दिगम्बरों का धर्म है और यह वस्त्रधारियों का।" मायामोह ने ऐसे अनेक प्रकार के अनेकान्तवाद दर्शाये, जिससे दैत्यों ने अपना वैदिकधर्म छोड़ दिया। उसने दैत्यों से कहा कि आप लोग इस महाधर्म को 'अर्हत'

२१. विष्णुपुराण / अंश ३ / अध्याय १७ / श्लोक ७-४२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

करें अर्थात् इसका आदर करें, अतः इस धर्म का अवलम्बन करने से वे 'आर्हत' कहलाये। इसके बाद उन्होंने अन्य दैत्यों को इस धर्म में प्रवृत्त किया, और अन्य दैत्यों ने अन्यों को। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में दैत्यों ने वेदत्रयी का प्रायः त्याग कर दिया—

एवं प्रकारैर्बहुभिर्युक्तिदर्शनचर्चितैः।
मायामोहेन ते दैत्या वेदमार्गादपाकृताः॥ ३/१८/८॥

धर्मायैतदधर्माय सदेतन्न सदित्यपि।
विमुक्तये त्विदं नैतद्विमुक्तिं सम्प्रयच्छति॥ ३/१८/९॥

परमार्थोऽयमत्यर्थं परमार्थो न चाप्ययम्।
कार्यमेतदकार्यं च नैतदेवं स्फुटं त्विदम्॥ ३/२/१०॥

दिग्वाससामयं धर्मो धर्मोऽयं बहुवाससाम्॥ ३/१८/११॥

इत्यनेकान्तवादं च मायामोहेन नैकधा।
तेन दर्शयता दैत्याः स्वधर्मं त्याजिता द्विज॥ ३/१८/१२॥

अर्हतैतं महाधर्मं मायामोहेन ते यतः।
प्रोक्तास्तमाश्रिता धर्ममार्हतास्तेन तेऽभवन्॥ ३/१८/१३॥

इसके बाद मायामोह ने रक्तवस्त्र धारणकर अर्थात् बौद्ध बनकर अन्य असुरों को बौद्ध धर्म ग्रहण कराया—

पुनश्च रक्ताम्बरधृङ् मायामोहो जितेन्द्रियः।
अन्यानाहासुरान् गत्वा मृद्वल्पमधुराक्षरम्॥ ३/१८/१६॥

स्वर्गार्थं यदि वो वाञ्छा निर्वाणार्थमथासुराः।
तदलं पशुघातादिदुष्टधर्मैर्निबोधत॥ ३/१८/१७॥

विज्ञानमयमेवैतदशेषमवगच्छत।
बुध्यध्वं मे वचः सम्यग्बुधैरेवमिहोदितम्॥ ३/१८/१८॥

मायामोह ने कई असुरों को चार्वाकमत में भी दीक्षित किया, जिससे वे वेदविरोधी बातें करने लगे। जैसे, यदि अनेकों यज्ञों के द्वारा देवत्व-लाभ करके इन्द्र को शमी आदि काष्ठ का ही भोजन करना पड़ता है, तो इससे तो पत्ते खानेवाला पशु ही अच्छा है। यदि यज्ञ में बलि किये गये पशु को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, तो यजमान अपने पिता को ही क्यों नहीं मार डालता?—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

यज्ञैरनेकैर्देवत्वमवाप्येन्द्रेण भुज्यते।
शम्यादि यदि चेत्काष्ठं तद्वरं पत्रभुक्पशुः॥ ३/१८/२६॥

निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते।
स्वपिता यजमानेन किन्नु तस्मान्न हन्यते॥ ३/१८/२८॥

इस प्रकार दैत्यों के विपरीतमार्ग में प्रवृत्त हो जाने पर देवगण अच्छी तैयारी करके उनके पास युद्ध के लिए उपस्थित हुए और पुनः देवासुरसंग्राम हुआ, जिसमें दैत्यगण देवताओं के द्वारा मारे गये।[२२]

विष्णुपुराण के उपर्युक्त श्लोकों में 'दिगम्बर', 'मुण्ड', 'मयूरपिच्छधारी', 'दिग्वाससों का धर्म' तथा 'अनेकान्तवाद' आदि शब्दों के प्रयोग से स्पष्ट है कि पुराणकार ने दिगम्बरजैन मुनि का वर्णन किया है। यद्यपि मायामोह द्वारा दैत्यों को जैनधर्म और बौद्धधर्म में दीक्षित किये जाने की कथा कल्पित है, क्योंकि बौद्धधर्म देवासुरसंग्राम के समय में था ही नहीं, तथापि यह कल्पना तीसरी-चौथी शताब्दी ई० में रचे गये विष्णुपुराण के रचयिता ने की है, इससे स्पष्ट है कि ये धर्म पुराणकार के समय से इतने अधिक प्राचीन थे कि उसने देवासुरसंग्राम के समय में भी बौद्धधर्म का अस्तित्व मान लिया। दिगम्बर जैनधर्म तो भगवान् ऋषभदेव के युग से चला आ रहा था, अतः उसमें दैत्यों के दीक्षित किये जाने की कल्पना असंगत सिद्ध नहीं होती।

११
मुद्राराक्षस नाटक (४००-५०० ई०) में क्षपणक, बीभत्सदर्शन

'मुद्राराक्षस' संस्कृत साहित्य का एक प्रसिद्ध नाटक है। इसके रचयिता विशाखदत्त हैं। विद्वानों ने इनका समय चौथी शताब्दी ई० का उत्तरार्ध और पाँचवी शताब्दी का पूर्वार्ध बतलाया है।[२३] नाटक में नन्दवंश का अन्त होने पर उसके 'राक्षस' नामक योग्य अमात्य को चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाये जाने के प्रयत्न की कथा वर्णित है। इसमें चाणक्य अपने इन्दुशर्मा नामक सहपाठी को क्षपणक (दिगम्बरजैन मुनि) का वेश धारण कराकर जीवसिद्धि नाम से गुप्तचर का काम कराता है। वह अमात्य राक्षस का छद्म-मित्र बन जाता है।

चतुर्थ अंक में वह अमात्य राक्षस से मिलने जाता है। अमात्य राक्षस को द्वारपाल सूचना देता है कि ज्योतिषी क्षपणक द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं। वैदिक सम्प्रदाय में साम्प्रदायिक कारण से क्षपणक (नग्न जैन मुनि) के दर्शन अशुभ माने जाते थे।

---

२२. विष्णुपुराण / अंश ३ / अध्याय १८ / श्लोक ३३-३४।

२३. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी : संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास / पृ. २८५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अत: अमात्य राक्षस अपशकुन का भाव प्रकट करते हुए (**आत्मगतम्, अनिमित्तं सूचयित्वा**) मन में कहता है—

'**कथं प्रथममेव क्षपणकः?**' (क्या शुरू में ही क्षपणक आ गया?)

फिर प्रकटरूप से द्वारपाल को आदेश देता है–'**अबीभत्सदर्शनं कृत्वा प्रवेशय**' (बीभत्सरूप को ढँककर भीतर ले जाओ)।

भाव यह है कि नग्न रहने के कारण दिगम्बरजैन मुनि का रूप जैनेतरों को बीभत्स लगता है, इसलिए अमात्य राक्षस द्वारपाल को आदेश देता है कि वह क्षपणक को वस्त्र से आच्छादित करके भीतर ले आवे। क्षपणक मंच पर प्रवेश करके निम्नलिखित गाथा पढ़ता है—

सासणमलिहन्ताणं पडिवज्जह मोहवाहिवेज्जाणं।
जे मुत्तमात्तकडुअं पच्छा पत्थं उवदिसन्ति॥ ४/१८॥

अनुवाद—"अज्ञानरूपी रोग का उपचार करनेवाले अरहन्तों के उपदेश को स्वीकार करो, जो क्षण भर के लिए कड़ुवा, परन्तु बाद में हितकारी होता है।"

वह पंचम अंक में अरहन्तों को प्रणाम करता है—

अलहन्ताणं पणमामि जे दे गंभीलदाए बुद्धीए।
लोउत्तलेहिं लोए सिद्धिं मग्गेहिं गच्छन्दि॥ ५/२॥

अनुवाद—"मैं अरहन्तों को प्रणाम करता हूँ , जो अपनी बुद्धि (ज्ञान) की गम्भीरता के कारण अलौकिक मार्गों के द्वारा मोक्ष प्राप्त करते हैं।"

इससे सिद्ध होता है कि चतुर्थ शताब्दी ई० में जैनेतर समाज दिगम्बरजैन मुनियों एवं उनके धर्म से सुपरिचित था और 'मुद्राराक्षस' नाटक के रचयिता विशाखदत्त स्वीकार करते थे कि ई० पू० चौथी शताब्दी में चन्द्रगुप्त और चाणक्य के समय दिगम्बरजैन मुनियों का अस्तित्व था। इस प्रकार जैनेतर भारतीय साहित्य और साहित्यकार इस बात के गवाह हैं कि दिगम्बर जैन परम्परा ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के पहले से चली आ रही है।

१२
वायुपुराण (५०० ई०) में नग्न, निर्ग्रन्थ

पुराणों पर महत्त्वपूर्ण शोधकार्य करने वाले श्री आर० सी० हाजरा ने वायुपुराण का रचनाकाल पाँचवी शताब्दी ई० निर्धारित किया है।[२४] यह शैव पुराण है। इसमें

२४. वही / पृ.७७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

गुप्त राजाओं का वर्णन है।[२५] इसमें कहा गया है कि श्राद्धकर्म को नग्नादि न देख पावें, नहीं तो श्राद्ध की वस्तुएँ न तो पितरों को प्राप्त होती हैं, न पितामहों को—

नग्नादयो न पश्येयुः श्राद्धमेवं व्यवस्थितम्।
गच्छन्ति तैस्तैर्दृष्टानि न पितॄन् पितामहान्॥[२६]

इस पर शंयु प्रश्न करते हैं कि नग्नादि कौन हैं? तब बृहस्पति उत्तर देते हैं—

----------।
यद्विश्राधकनिर्ग्रन्थाः शक्त्या जीवन्ति कर्पटाः॥
ये धर्मं नानुवर्तन्ते ते वै नग्नादयो जनाः।
----------॥[२७]

अनुवाद—"जो श्राद्धादि कार्यों का विरोध करनेवाले और वैदिक धर्म का अनुसरण न करनेवाले निर्ग्रन्थ (दिगम्बरजैन मुनि) आदि हैं, वे नग्नादि कहलाते हैं।"

इस प्रमाण से दिगम्बरजैनमत पाँचवी शताब्दी ई० से पूर्ववर्ती सिद्ध होता है।

१३

वराहमिहिर-बृहत्संहिता (४९० ई०) में नग्न, दिग्वासस् , निर्ग्रन्थ

प्रसिद्ध ज्योतिष-शास्त्री वराहमिहिर का स्थितिकाल विद्वानों ने ४९० ई० के लगभग माना है।[२८] उन्होंने अपने ग्रन्थ बृहत्संहिता के प्रतिष्ठापनाध्याय में लिखा है—

विष्णोर्भागवतान् मगांश्च सवितुः शम्भोः सभस्मद्विजान्
मातॄणामपि मण्डलक्रमविदो विप्रान् विदुर्ब्रह्मणः।
शाक्यान् सर्वहितस्य शान्तमनसो नग्नान् जिनानां विदु-
र्यें यं देवमुपाश्रिताः स्वविधिना तैस्तस्य कार्याः क्रियाः॥ ६०॥[२९]

अनुवाद—"भागवत विष्णु के, मग सूर्य के, भस्माञ्चित द्विज शम्भु के, मातृमण्डलवेत्ता माताओं के, विप्र ब्रह्मा के, शाक्य बुद्ध के और नग्न 'जिन' के उपासक या प्रतिष्ठापक होते हैं। अतः जो जिस देव के उपासक हैं, वे अपनी-अपनी विधि से उसकी प्रतिष्ठादि क्रियाएँ करें।"

---

२५. वही / पृ.८१।
२६. वायुपुराण ७८ / २४।
२७. वही / ७८ / ३०-३१।
२८. डॉ. बलदेव उपाध्याय : संस्कृतसाहित्य का इतिहास / पृ.५०६।
२९. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री : जैन साहित्य का इतिहास / पूर्वपीठिका / पृ.४७२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

वराहमिहिर ने उपर्युक्त अध्याय में यह भी लिखा है—

आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्साङ्कप्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः॥ ४५॥[३०]

अनुवाद—"आर्हतों के देव की प्रतिमा के दोनों बाहु जानुपर्यन्त होने चाहिये, वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न अंकित किया जाना चाहिये, मुखमुद्रा प्रशान्त हो तथा शरीर नग्न, तरुण एवं रूपवान् होना चाहिए।"

वराहमिहिर ने बृहज्जातक में प्रव्रज्यायोग बतलाते हुए जिन सात प्रकार के साधुओं का निर्देश किया है, उनके नाम इस प्रकार हैं: शाक्य, आजीविक, भिक्षु, वृद्ध , चरक, निर्ग्रन्थ और वन्याशन (तापस)—"**शाक्याजीविकभिक्षुवृद्धचरका निर्ग्रन्थवन्याशनाः**" (१५/१)[३१] इसकी टीका में भट्टोत्पल (ई० ९५०) ने 'निर्ग्रन्थ' का अर्थ 'नग्नक्षपणक' किया है—"**निर्ग्रन्थो नग्नः क्षपणकः प्रावरणरहितः।**"[३२]

इन उल्लेखों में वराहमिहिर ने जिनेन्द्रदेव के उपासकों को नग्न, आर्हत और निर्ग्रन्थ कहा है। इससे सिद्ध है कि दिगम्बरजैन-परम्परा पाँचवी शताब्दी ई० के पूर्व विद्यमान थी और वराहमिहिर के काल में 'निर्ग्रन्थ' शब्द 'नग्न' अर्थ का वाचक था।

१४
उत्तरभारत में जैन नाम से दिगम्बर ही सर्वाधिक प्रसिद्ध

एक बात ध्यान देने योग्य है कि वराहमिहिर को श्वेताम्बरसाहित्य में निर्युक्तिकार भद्रबाहु का भ्राता माना गया है,[३३] किन्तु वराहमिहिर ने केवल नग्नों को ही जिनों का उपासक बतलाया है, श्वेतपटों को नहीं, जैसा कि उपर्युक्त श्लोक के '**नग्नान् जिनानां विदुः**' इन वचनों से ज्ञात होता है। उन्होंने पूर्वोक्त 'बृहज्जातक' (१५/१) में शाक्य, आजीविक, भिक्षु , वृद्ध, चरक, निर्ग्रन्थ और वन्याशन (तापस), इन सात प्रकार के साधुओं का उल्लेख किया है और 'लघुजातक' में इन्हीं का नामान्तर से कथन निम्नलिखित श्लोक में किया है—

तापस-वृद्धश्रावक-रक्तपटाजीवि-भिक्षु-चरकाणाम्।
निर्ग्रन्थानां चार्कात् पराजितैः प्रच्युतिर्बलभिः॥ १२/१२॥[३४]

३०. वही / पृ. ४७३।
३१. वही / पृ. ४७१।
३२. वही / पृ. ४७३।
३३. श्री देवेन्द्रमुनिशास्त्री : जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा / पृ. ४३७।
३४. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री : जैन साहित्य का इतिहस / पूर्वपीठिका / पृ. ४७२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इसी श्लोक की टीका में इन सप्तविध साधुओं का वर्णन निम्नलिखित नामों से किया गया है—

वानप्रस्थोऽथ कापाली बौद्धः स्यादेकदण्डिनः।
त्रिदण्डी योगिनो नग्नः प्रव्रज्यार्कादितः क्रमात्॥[३५]

यहाँ तापस को वानप्रस्थ, वृद्धश्रावक को कापालिक, रक्तपट को बौद्ध, आजीविक को एकदण्डी, भिक्षु को त्रिदण्डी, चरक को योगी और निर्ग्रन्थ को नग्न शब्द से विवेचित किया गया है।

इससे स्पष्ट है कि वराहमिहिर को 'निर्ग्रन्थ' शब्द से भी 'नग्न (दिगम्बर) जैन साधु' अर्थ ही अभिप्रेत था।

यह आश्चर्य की बात है कि श्वेताम्बरसाहित्य में वराहमिहिर को श्वेताम्बराचार्य भद्रबाहु (निर्युक्तिकार) का कनिष्ठ भ्राता माना गया है, किन्तु वराहमिहिर ने केवल नग्नों को ही 'जिन' का उपासक कहा है, श्वेतपटों को नहीं, तथा उन्होंने 'निर्ग्रन्थ' 'नग्न' और 'रक्तपट' शब्दों का प्रयोग तो किया है, 'किन्तु श्वेतपट' या 'सिताम्बर' शब्द कहीं भी प्रयुक्त नहीं किया। इसके अतिरिक्त समस्त वैदिक, बौद्ध एवं संस्कृत साहित्य में जैनसाधु के रूप में निर्ग्रन्थों, क्षपणकों, दिग्वाससों और वातरशनों का जितना अधिक उल्लेख हुआ है, उतना श्वेतपटों, सिताम्बरों या श्वेताम्बरों का नहीं हुआ। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राचीनकाल में दक्षिणभारत की तरह उत्तरभारत में भी दिगम्बर साधु ही जैनसाधु के रूप में सर्वाधिक प्रसिद्ध थे।

१५
भागवतपुराण (६०० ई०) में वातरशन श्रमण, गगनपरिधान

पुराण-विशेषज्ञ श्री आर० सी० हाजरा ने भागवतपुराण का रचनाकाल ६०० ई० के लगभग आकलित किया है।[३५] यह वैदिक परम्परा का सर्वाधिक प्रसिद्ध पुराण है। "वैष्णव धर्म के अनुयायी इसे पाँचवाँ वेद ही मानते हैं। कविता और दर्शन का दुर्लभ मणिकांचनयोग इस पुराण में हुआ है। यह चिन्तन, पाण्डित्य और काव्य की कसौटी माना गया है। कहा भी है—"**विद्यावतां भागवते परीक्षा**" अर्थात् विद्वानों की परीक्षा भागवत में ही है। विष्णु के अवतारों का वर्णन करते हुए भागवतकार ने सांख्य के प्रवर्तक कपिलमुनि तथा गौतम बुद्ध को भी उनके अवतारों में निरूपित करके धर्म के सम्बन्ध में समन्वय की दृष्टि का परिचय दिया है। पंचम स्कन्ध में ऋषभदेव

३५. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी / संस्कृतसाहित्य का अभिनव इतिहास / पृ.७७।

और जड़भरत का चरित्र अत्यन्त प्रेरणास्पद है। भागवत के दसवें और ग्यारहवें स्कन्ध श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन के लिए प्रसिद्ध तथा अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं।''[३६]

यह पूर्व (शीर्षक १) में कहा जा चुका है कि भागवतपुराण के वर्णनानुसार भगवान् विष्णु ने राजा नाभि का प्रिय करने के लिए महारानी मेरुदेवी के गर्भ में ऋषभदेव के रूप में अवतार लिया था, जिसका उद्देश्य था वातरशन-श्रमण-ऋषियों के धर्म (दिगम्बर जैनधर्म) को प्रकट करना—

''बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त! भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तन्वावततार।'' (भा.पु./५/३/२०/पृ.२०७-२०८)।

भागवतपुराण का यह भी कथन है कि ऋषभदेव ने महामुनियों को भक्तिज्ञानवैराग्यरूप पारमहंस्य धर्म की शिक्षा देने के लिए अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत का राज्याभिषेक कर स्वयं घर में ही समस्त परिग्रह का त्याग कर दिया और उन्मत्त के समान नग्न हो गये, केशों का संस्कार करना छोड़ दिया, जिससे वे अस्तव्यस्त हो गये और इसी हालत में ब्रह्मावर्त से चल पड़े—

''महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरित-शरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात् प्रवव्राज।'' (भा.पु./५/३/२८/पृ.२११)।

इस तरह भागवतपुराण में भी ऋषभदेव को दिगम्बरजैन मुनियों के ही धर्म का प्रवर्तक बतलाया है, श्वेताम्बरजैन मुनियों के धर्म का नहीं। अर्थात् उन्होंने एकान्ततः वातरशन (नग्न) मुनियों के ही धर्म का प्रवर्तन किया था, चेलरशन (सवस्त्र) मुनियों के धर्म का अपवाद रूप से भी प्रवर्तन नहीं किया और **६०० ई० के भागवतपुराणकार ने ऋषभदेव को ही दिगम्बरजैनधर्म का प्रणेता कहा है, आचार्य कुन्दकुन्द को नहीं।** इससे सिद्ध है कि दिगम्बरजैन-परम्परा भागवत-पुराण के रचनाकाल से भी बहुत पूर्ववर्ती है, उतनी ही पूर्ववर्ती जितनी भागवतपुराण के रचयिता ने बतलायी है और जैनपुराण भी बतलाते हैं अर्थात् ऋषभदेवकालीन। तथा भागवत के अनुसार ऋषभदेव 'स्वायम्भुव' नाम के प्रथम मनु की पाँचवी पीढ़ी में (स्वायम्भुवमनु , प्रियव्रत, आग्नीध्र, नाभि और ऋषभ) हुए थे। अतः **मन्वन्तर-कालगणना के अनुसार दिगम्बरजैनपरम्परा कम से कम ढाई करोड़ वर्ष प्राचीन सिद्ध होती है,** यह पूर्व में दर्शाया जा चुका है। (देखिये, शीर्षक १०.१)। पुनः भगवान् ऋषभदेव का जन्म ब्रह्मावर्त में हुआ था,

३६. वही / पृ. ८०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

न कि दक्षिणापथ में, इससे यह सिद्ध होता है कि दिगम्बरजैन-परम्परा का जन्म उत्तरभारत में ही हुआ था, दक्षिणभारत में नहीं। इस प्रकार 'श्रीमद्भागवतमहापुराण' दिगम्बरजैन-परम्परा की ऋषभयुगीन प्राचीनता को प्रमाणित करने वाला महत्त्वपूर्ण वैदिक ग्रन्थ है।

१६

ऋषभदेव का वैदिकधारा पर प्रभाव

विष्णुपुराण और भागवतपुराण से एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आता है। वह यह कि विष्णुपुराण के अनुसार मायामोह ने और भागवतपुराण के अनुसार ऋषभदेव ने एकमात्र नग्नमुनि-मार्ग का ही प्रवर्तन किया था, नग्न और अनग्न (अचेल और सचेल) दोनों प्रकार के मुनिमार्गों का नहीं। वैदिक ऋषियों ने भी भगवान् ऋषभदेव से दिगम्बर-मुनिमार्ग की ही शिक्षा ग्रहण की थी। यह बात भागवतपुराण एवं उपनिषदों से प्रमाणित होती है।

भागवतपुराण के पूर्वोद्धृत वाक्यों में कहा गया है कि विष्णु के अवतार भगवान् ऋषभदेव ने पारमहंस्य धर्म की शिक्षा दी थी, जो भक्तिज्ञानवैराग्यस्वरूप है। पूर्वोद्धृत वाक्यों में यह भी कहा गया है कि भगवान् विष्णु ने वातरशन (दिगम्बर) ऋषियों के धर्म का उपदेश देने के लिए ऋषभदेव के रूप में अवतार लिया था। इससे सिद्ध है कि पारमहंस्य धर्म में दिगम्बरत्व की प्रधानता है। परमहंससाधु की अन्तिम अवस्था अवधूत-अवस्था है, जिसमें वह जड़ के समान, अन्धे-गूँगे और बहिरे के समान तथा पिशाच के समान उन्मादक सा हो जाता है। भागवतपुराण के अनुसार भगवान् ऋषभदेव इस अवस्था में पहुँच गये थे—

''जडान्ध-मूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीत-मौनव्रतस्तूष्णीं बभूव।''(भा.पु./५/५/२९/पृ. २११)।

जड़ के समान हो जाने का अर्थ है सांसारिक पदार्थों के प्रति प्रतिक्रियारहित हो जाना, वीतराग हो जाना, उनसे सुख-दुःख का अनुभव न करना। मूक के समान हो जाने का मतलब है शुभाशुभवचनप्रवृत्ति न करना, अन्धे होने का अभिप्राय है चक्षु-इन्द्रिय के विषय को देखकर भी न देखना अर्थात् उसमें राग-द्वेष न करना, बधिर होने से तात्पर्य है श्रोत्रेन्द्रिय के विषय को सुनकर भी न सुनना अर्थात् उसमें आसक्त न होना। शरीर से विरक्त हो जाने के कारण परमहंससाधु न तो वस्त्रधारण करता है, न स्नानादि द्वारा शरीर का संस्कार करता है, इसलिए बाल बिखरे रहते हैं, शरीर पर मैल चढ़ जाता है, जिससे वह नंगधड़ंग, मैले-कुचैले, बीभत्स रूप के कारण पागल (उन्मत या पिशाचग्रस्त मनुष्य) के समान लगता है। यह भी उसके अवधूत

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

रूप का लक्षण है। भगवान् ऋषभदेव के इस रूप का वर्णन भागवतपुराण में इस प्रकार किया गया है—

''परागवलम्बमान-कुटिल-जटिल-कपिश-केश-भूरिभारोऽवधूतमलिन-निजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यत।'' (भा.पु./५/५/३१/पृ. २११)।

यद्यपि भगवान् ऋषभदेव अखिल लोकपालकों के आभूषण थे, तथापि उनके विलक्षण जड़वत् अवधूतीय वेश, भाषा और आचरण से उनका भगवत्प्रभाव परिलक्षित नहीं होता था—

''अथैवमखिल-लोकपाल-ललामोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूतवेषभाषाचरितैरविलक्षित-तभगवत्प्रभावो योगिनां साम्परायविधिमनुशिक्षयन् स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमनर्थान्तरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम।'' (भा.पु./५/६/६/पृ.२१२)।

वे बहुत दिनों तक दक्षिण के कर्णाटक आदि देशों में बिखरे हुए बालों-सहित नग्न विचरण करते रहे—**''मुक्तमूर्धजोऽसंवीत एव विचचार।''** (भा.पु.५/६/७/पृ.२१२) इसे भागवतपुराणकार ने जडयोगचर्या कहा है—

नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनु-
र्यो वै चचार समदृग् जडयोगचर्याम्।
यत्पारमहंस्यमृषयः पदमामनन्ति
स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः॥ २/७/१०॥

अर्थात् भगवान् ऋषभदेव की उपर्युक्त वीतराग, शरीरादि से उदासीन, दिगम्बर-चर्या का नाम ही **पारमहंस्य, अवधूतसंन्यास** एवं **जड़योग** है। इसके द्वारा उन्हें अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हुईं, जैसे आकाशगमन, मन के समान तीव्रगति, अन्तर्धान, परकायाप्रवेश, दूरग्रहण (इन्द्रियों की सीमा से बाहर के विषय को भी ग्रहण करना) आदि, किन्तु भगवान् ने इनमें रुचि नहीं ली। इसके बाद उन्हें कैवल्य एवं परमानन्द की अवस्था प्राप्त हो गई—

''इति नानायोगचर्याचरणो भगवान् कैवल्यपतिर्ऋषभोऽविरतपरम-महानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानानन्तरोदरभावेन सिद्धसमस्तार्थपरिपूर्णो योगैश्वर्याणि वैहायसमनोजवान्तर्धान-परकायप्रवेश-दूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नाञ्जसा नृप हृदयेनाभ्यनन्दत्।'' (भा.पु./५/५/३५/पृ.२११-२१२)।

भगवान् ऋषभदेव के सौ पुत्र थे, जिनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम भरत था। उन्हीं के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा—**''येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति।''** (भा.पु./५/४/९/पृ.२०८)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

रूप का लक्षण है। भगवान् ऋषभदेव के इस रूप का वर्णन भागवतपुराण में इस प्रकार किया गया है—

''परागवलम्बमान-कुटिल-जटिल-कपिश-केश-भूरिभारोऽवधूतमलिन-निजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यत।'' (भा.पु./५/५/३१/पृ. २११)।

यद्यपि भगवान् ऋषभदेव अखिल लोकपालकों के आभूषण थे, तथापि उनके विलक्षण जड़वत् अवधूतीय वेश, भाषा और आचरण से उनका भगवत्प्रभाव परिलक्षित नहीं होता था—

''अथैवमखिल-लोकपाल-ललामोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूतवेषभाषाचरितैरविलक्षितभगवत्प्रभावो योगिनां साम्परायविधिमनुशिक्षयन् स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमनर्थान्तरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम।'' (भा.पु./५/६/६/पृ.२१२)।

वे बहुत दिनों तक दक्षिण के कर्णाटक आदि देशों में बिखरे हुए बालों-सहित नग्न विचरण करते रहे—**''मुक्तमूर्धजोऽसंवीत एव विचचार।''** (भा.पु.५/६/७/पृ.२१२) इसे भागवतपुराणकार ने जडयोगचर्या कहा है—

नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनु-
र्यो वै चचार समदृग् जडयोगचर्याम्।
यत्पारमहंस्यमृषयः पदमामनन्ति
स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः॥ २/७/१०॥

अर्थात् भगवान् ऋषभदेव की उपर्युक्त वीतराग, शरीरादि से उदासीन, दिगम्बर-चर्या का नाम ही **पारमहंस्य, अवधूतसंन्यास** एवं **जड़योग** है। इसके द्वारा उन्हें अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हुईं, जैसे आकाशगमन, मन के समान तीव्रगति, अन्तर्धान, परकायाप्रवेश, दूरग्रहण (इन्द्रियों की सीमा से बाहर के विषय को भी ग्रहण करना) आदि, किन्तु भगवान् ने इनमें रुचि नहीं ली। इसके बाद उन्हें कैवल्य एवं परमानन्द की अवस्था प्राप्त हो गई—

''इति नानायोगचर्याचरणो भगवान् कैवल्यपतिर्ऋषभोऽविरतपरम-महानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानानन्तरोदरभावेन सिद्धसमस्तार्थपरिपूर्णो योगैश्वर्याणि वैहायसमनोजवान्तर्धान-परकायप्रवेश-दूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नाऽऽसा नृप हृदयेनाभ्यनन्दत्।'' (भा.पु./५/५/३५/पृ.२११-२१२)।

भगवान् ऋषभदेव के सौ पुत्र थे, जिनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम भरत था। उन्हीं के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा—**''येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति।''** (भा.पु./५/४/९/पृ.२०८)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

भरत भी महायोगी थे। उन्होंने भी जड़योग, पारमहंस्य अथवा अवधूत-संन्यास ग्रहण किया था, इसलिए वे जड़भरत कहलाये।[३७] उपनिषदों में उन्हें आठ परमहंस-संन्यासियों में परिगणित किया गया है—"**अथ परमहंसा नाम संवर्तकारुणि-श्वेतकेतु-जडभरत-दत्तात्रेय-शुक-वामदेव-हारीतकप्रभृतयोऽष्टौ।**"[३८]

१७

जाबालोपनिषद् में दिगम्बरजैन-मुनिधर्मवत् पारमहंस्यधर्म

भगवान् ऋषभदेव ने जिस दिगम्बरजैनमुनि-धर्मरूप पारमहंस्यधर्म की शिक्षा दी थी उसका स्वरूप जाबालोपनिषद् में वर्णित किया गया है। वह प्रायः दिगम्बर जैन शास्त्रों में वर्णित दिगम्बरजैन-मुनिधर्म से मिलता है। पारिभाषिक शब्दावली भी वही की वही है। यथा—

"**तत्र परमहंसा नाम संवर्तकारुणि-श्वेतकेतु-दुर्वास-ऋभु-निदाघ-जडभरत-दत्तात्रेय-रैवतक-प्रभृतयोऽव्यक्तलिङ्गा अव्यक्ताचारा अनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरन्तस्त्रिदण्डं कमण्डलुं, शिक्यं, पात्रं, जलपवित्रं, शिखां, यज्ञोपवीतं चेत्येतत् सर्वं भूः स्वाहेत्यप्सु परित्यज्या-त्मानमन्विच्छेत्। यथाजातरूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहस्तत्तद्ब्रह्ममार्गे सम्यक्सम्पन्नः शुद्ध-मानसः प्राणसन्धारणार्थं यथोक्तकाले विमुक्तो भैक्षमाचरन्नुदर-पात्रेण लाभालाभयोः समोभूत्वा शून्यागार-देवगृह-तृणकूट-वल्मीक-वृक्षमूल-कुलालशालाग्निहोत्रगृह-नदी-पुलिन-गिरिकुहर-कन्दर-कोटर-निर्झर-स्थण्डिलेषु तेष्वनिकेतवास्यप्रयत्नो निर्ममः शुक्लध्यानपरायणोऽध्यात्मनिष्ठोऽशुभकर्मनिर्मूलनपरः संन्यासेन देहत्यागं करोति स परमहंसो नाम परमहंसो नामेति।**" (जाबालो./ईशाद्यष्टो./पृ.१३१)।

अनुवाद—"संवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, दुर्वासा, ऋभु, निदाघ, जड़भरत, दत्तात्रेय, रैवतक आदि परमहंस संन्यासी हैं। इनका लिंग (वेश) और आचार स्पष्ट नहीं होता। ये विक्षिप्त नहीं होते, लेकिन विक्षिप्तों जैसा आचरण करते हैं, त्रिदण्ड (परस्पर बँधे तीन दण्ड), कमण्डलु , झोली (शिक्य), पात्र, पानी छानने का वस्त्र (जलपवित्र), शिखा और यज्ञोपवीत (जनेऊ), इन सबको '**भूः स्वाहा**' यह मन्त्र पढ़ते हुए जल में विसर्जित कर आत्मा का अन्वेषण करते हैं। जो यथाजातरूपधारी (जन्म के समय जैसा रूप होता है वैसे रूप अर्थात् नग्नरूप का धारी), निर्ग्रन्थ (नग्न), निष्परिग्रह, ब्रह्ममार्ग में सम्यक्सम्पन्न और शुद्धमानस होता है, प्राणधारण करने के लिए निर्धारित काल में भिक्षाचरण करता हुआ उदरपात्र में ही भोजन ग्रहण करता है, भिक्षा मिले

३७. भागवतपुराण / स्कन्ध ५ / अध्याय ७-१४।

३८. भिक्षुकोपनिषद् / ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद् / पृ. ३६८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

या न मिले दोनों स्थितियों में समभाव रखता है, सूने घर, देवालय, तृणकूट (घासफूस की झोपड़ी), वल्मीक, वृक्षतल, कुलालशाला (कुम्हार की दहलान), अग्निहोत्रगृह, नदीपुलिन, पर्वत की गुफा, कन्दरा, वृक्ष के कोटर, निर्झर या स्थण्डिल (यज्ञभूमि) में निवास करता है, किसी चीज के प्रति ममत्व नहीं रखता, अध्यात्मनिष्ठ होकर शुक्लध्यान में लीन रहता है और अशुभकर्मों के निर्मूलन का प्रयत्न करता हुआ, संन्यास से देहत्याग करता है, उस साधु का नाम परमहंस है।''

यहाँ ध्यान देने योग्य है कि 'यथाजातरूपधर' 'निर्ग्रन्थ', 'निष्परिग्रह' उदरपात्र से आहारग्रहण, शून्यागार, देवगृह आदि में निवास, 'शुक्लध्यान' तथा संन्यास से देहत्याग (सल्लेखना), ये पारिभाषिक शब्द और आचार केवल दिगम्बरजैन-मुनिधर्म से सम्बन्ध रखते हैं और दिगम्बरजैन-शास्त्रों में ही उपलब्ध होते हैं। 'यथाजातरूपधर', 'निर्ग्रन्थ' और 'शुक्लध्यान' तो ऐसे शब्द हैं, जो 'योग' के सबसे प्राचीन वैदिक ग्रन्थ 'पातंजलयोगदर्शन' में भी प्रयुक्त नहीं हुए हैं। इससे सिद्ध है कि श्रीमद्भागवतपुराण और जाबालोपनिषद् में वर्णित पारमहंस्यधर्म भगवान् ऋषभदेव के द्वारा उपदिष्ट दिगम्बरजैन-मुनिधर्म का ही अनुकृतरूप है।

पारमहंस्यधर्म का यह स्वरूप नारदपरिव्राजकोपनिषद्, परमहंसपरिव्राजकोपनिषद्, तुरीयातीतोपनिषद्, संन्यासोपनिषद्, याज्ञवल्क्योपनिषद् और भिक्षुकोपनिषद् में भी मिलता है।

परमहंसोपनिषत् में परमहंसभिक्षु को आकाशाम्बर (दिगम्बर) कहा गया है—**''स परमहंस आकाशाम्बरो, न नमस्कारो, न स्वाहाकारो, न निन्दा, न स्तुतिर्यादृच्छिको भवेत्स भिक्षुः।''**(ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद् / पृ.१५०)।

संन्यासोपनिषद् (अनुच्छेद१३) में संन्यासियों के चार भेद वर्णित हैं—**''वैराग्यसंन्यासी ज्ञानसंन्यासी ज्ञानवैराग्यसंन्यासी कर्मसंन्यासीति चातुर्विध्यमुपागतः।''** (ईशाद्यष्टो./ पृ.४१२)। इनमें जो संन्यासी वैराग्यसंन्यास और ज्ञानसंन्यास का अभ्यास तथा अनुभव कर ज्ञानवैराग्यसंन्यास को प्राप्त करने के लिए जातरूपधर (नग्न) हो जाता है वह ज्ञानवैराग्यसंन्यासी कहलाता है—

''क्रमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञानवैराग्याभ्यां स्वरूपानुसन्धानेन देहमात्रावशिष्टः संन्यस्य जातरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्यसंन्यासी।'' (संन्यासो. / ईशाद्यष्टो. / १३ / पृ.४१२)।

यद्यपि कहीं-कहीं परमहंस संन्यासी के लिए कौपीनधारण करने का भी विकल्प दिया गया है, किन्तु अन्ततः दिगम्बर होने की अनिवार्यता बतलायी गयी है। **संन्यासोपनिषद्**

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

में संन्यासियों के अन्य छह भेदों का वर्णन है—कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस, तुरीयातीत और अवधूत।[३९] इनमें प्रथम चार को कौपीनधारी बतलाया गया है और शेष दो को दिगम्बर,यथा—

"**परमहंसः शिखायज्ञोपवीतरहितः पञ्चगृहेषु करपात्री एककौपीनधारी शाटीमेकामेकं वैणवं दण्डमेकशाटीधरो वा भस्मोद्धूलनपरः सर्वत्यागी। तुरीयातीतो गोमुखवृत्त्या फलाहारी अन्नाहारी चेद् गृहत्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बरः कुणपवच्छरीरवृत्तिकः। अवधूतस्त्वनियमः पतिताभिशस्तवर्जनपूर्वकं सर्ववर्णेष्वजगरवृत्त्याहारपरः स्वरूपानुसन्धानपरः।**" (सन्यासोपनिषद् / ईशाद्यष्टो.१३ / पृ.४१३)।

नारदपरिव्राजकोपनिषद् (७) में कहा गया है कि कुटीचक दो शाटी धारण करे , बहूदक एक शाटी, हंस एक वस्त्रखंड, परमहंस दिगम्बर रहे या एक कौपीन पहने, तुरीयातीत और अवधूत दिगम्बर रहें—

"**शाटीद्वयं कुटीचकस्य, बहूदकस्यैकशाटी, हंसस्य खण्डं, दिगम्बरं परमहंसस्य एककौपीनं वा, तुरीयातीतावधूतयोर्जातरूपधरत्वम्।**" (ईशाद्यष्टो / पृ.२७८)।

परमहंसपरिव्राजकोपनिषद् में वर्णन है कि जब अलंबुद्धि (पर्याप्त ज्ञान) हो जाय, तब कुटीचक, बहूदक, हंस अथवा परमहंस सम्बन्धित-मंत्रपूर्वक कटिसूत्र, कौपीन, दण्ड, कमंडलु, आदि सबको जल में विसर्जित कर जातरूपधर (दिगम्बर) हो जाय—

"**यदालम्बुद्धिर्भवेत्तदा कुटीचको वा बहूदको वा हंसो वा परमहंसो वा तत्तन्मन्त्रपूर्वकं कटिसूत्रं कौपीनं दण्डं कमण्डलुं सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेत्।**" (ईशाद्यष्टो./ पृ.४१९)।

तुरीयातीतोपनिषद् में कुटीचक अवस्था से तुरीयातीत और अवधूत अवस्थाओं को प्राप्त करने का क्रम इस प्रकार बतलाया गया है—

"**सोऽयमादौ तावत्क्रमेण कुटीचको बहूदकत्वं प्राप्य, बहूदको हंसत्वमवलम्ब्य, हंसः परमहंसो भूत्वा स्वरूपानुसन्धानेन सर्वप्रपञ्चं विदित्वा दण्डकमण्डलु-कटिसूत्र-कौपीनाच्छादनं स्वविध्युक्तक्रियादिकं सर्वमप्सु संन्यस्य दिगम्बरो भूत्वा विवर्णजीर्ण-वल्कलाजिनपरि-ग्रहमपि सन्त्यज्य तदूर्ध्वममन्त्रवदाचरन् क्षौराभ्यङ्गस्नानोर्ध्वपुण्ड्रादिकं विहाय --- शीतोष्ण-सुखदुःखमानावमानं निर्जित्य वासनात्रयपूर्वकं निन्दानिन्दा-गर्वमत्सरदम्भ-दर्प-द्वेष-कामक्रोधलोभमोह-हर्षामर्षासूयात्मसंरक्षणादिकं दग्ध्वा स्ववपुः कुणपाकारमिव पश्यन्न-यत्नेनानियमेन लाभालाभौ समौ कृत्वा गोवृत्त्या प्राण-संधारणं**

---

३९. "स संन्यासः षड्विधो भवति कुटीचक-बहूदक-हंस-परमहंस-तुरीयातीतावधूताश्चेति।" संन्यासोपनिषद् / अनुच्छेद १३ / ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद् / पृ. ४१३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कुर्वन् यत्प्राप्तं तेनैव निर्लोलुपः --- सर्वदानुन्मत्तो बालोन्मत्त-पिशाचवदेकाकी सञ्चरन्नसम्भाषणपरः स्वरूपध्यानेन निरालम्बमवलम्ब्य स्वात्मनिष्ठानुकूलेन सर्वं विस्मृत्य तुरीयातीतावधूतवेषेणाद्वैतनिष्ठापरः प्रणवात्मकत्वेन देहत्यागं करोति यः सोऽवधूतः। स कृतकृत्यो भवतीत्युपनिषत्।'' (ईशाद्यष्टो./पृ. ४१०)।

अनुवाद—''सबसे पहले कुटीचक साधु बहूदक अवस्था को प्राप्त करे, फिर बहूदक हंसावस्था का अवलम्बन करे, तदनन्तर हंस, परमहंस अवस्था में पहुँचे। परमहंस होकर स्वरूपानुसन्धान द्वारा सबको प्रपंच समझकर दण्ड, कमंडलु, कटिसूत्र, कौपीन और आच्छादन, इन सब को स्वविधि के अनुसार जल में विसर्जित कर दिगम्बर हो जाय। विवर्ण जीर्ण वल्कल तथा अजिन के परिग्रह का भी त्याग कर दे। तदनन्तर क्षौर, अभ्यङ्ग, (तेलमालिश), स्नान, ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि को त्याग दे तथा शीत-उष्ण, सुख-दुःख, मान-अपमान को जीतकर वासनात्रयपूर्वक, निन्दा, अनिन्दा, गर्व, मत्सर, दम्भ, दर्प, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, अमर्ष, असूया, आत्मसंरक्षणादि को दग्ध कर अपने शरीर को शव के समान समझता हुआ लाभ-अलाभ में समभाव रखते हुए गोचरी द्वारा प्राणधारण करे।---सदा अनुन्मत्त रहे, किन्तु, उन्मत्त एवं पिशाच के समान अकेला भ्रमण करे और किसी से बातचीत न करते हुए स्वरूप में लीन होकर सब को भूल जाय। इस प्रकार तुरीयातीत और अवधूत का वेष धारणकर अद्वैत में निष्ठा रखते हुए, ओंकारध्वनि के साथ जो देहत्याग करता है वह 'अवधूत' कहलाता है। वही कृतकृत्य होता है, यह उपनिषत् (आगमवचन) है।''

इस उपनिषत् से स्पष्ट है कि परमहंस को भी अन्ततः कौपीन का परित्याग करना पड़ता है और जब वह कौपीन त्यागकर दिगम्बर हो जाता है, तभी तुरीयातीत एवं अवधूत अवस्थाओं को प्राप्त होकर मोक्ष का पात्र बनता है। **इस प्रकार वैदिक संन्यासमार्ग में भी सवस्त्रमुक्ति की वैकल्पिक व्यवस्था नहीं है।** यह दिगम्बरजैन-मुनिधर्म के घनिष्ठ प्रभाव का सूचक है। इतना ही नहीं, इस औपनिषदिक संन्यासमार्ग में जो शीतोष्ण सुख-दुःखादि परीषहों को जीतने, कामक्रोधादिकषायों के विसर्जन, अस्नान,[४०] भूतलशयन,[४१] करपात्र या पाणिपात्र में आहारग्रहण, एकभुक्ति[४२] शुक्लध्यान-परायणता, शुभाशुभकर्म-निर्मूलन तथा संन्यासपूर्वक (सल्लेखनापूर्वक) देहत्याग[४३] के सिद्धान्त हैं, वे भी दिगम्बर-मुनि-चर्या से ही अनुकृत हैं।

---

४०. ''त्रिषवणस्नानं कुटीचकस्य, बहूदकस्य द्विवारं, हंसस्यैकवारं, परमहंसस्य मानसस्नानं तुरीयातीतस्य भस्मस्नानम् अवधूतस्य वायव्यस्नानम्।'' नारदपरिव्राजकोपनिषद्/ईशाद्यष्टो./पृष्ठ २७८।

४१. ''सर्वत्र भूतलशयनः--- परमहंसपरिव्राजको भवति।'' परमहंसपरिव्राजकोपनिषद्/ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्/पृष्ठ ४१९।

४२. ''पाणिपात्रश्चरन्योगी नासकृद्मैक्षमाचरेत्'' नारदपरिव्राजकोपनिषद्/ईशाद्यष्टो./ पृष्ठ २७३।

४३. ''शुभाशुभकर्मनिर्मूलनपरः--- शुक्लध्यानपरायणः--- संन्यासेन देहत्यागं करोति स परमहंसपरिव्राजको भवति।'' परमहंसपरिव्राजकोपनिषद् /ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्/पृ.४१९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१८

योग के आद्यप्रवर्तक भगवान् ऋषभदेव

भागवतपुराण एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य पर प्रकाश डालता है, वह यह कि भगवान् ऋषभदेव ही योगविद्या के आद्य प्रवर्तक थे। इस पुराण में कहा गया है कि भगवान् विष्णु ने वातरशन (दिगम्बर) ऋषियों के धर्मों को प्रकट करने के लिए भगवान् ऋषभदेव के रूप में अवतार लिया था। उन्होंने पारमहंस्यधर्म और योगियों को साम्परायविधि की शिक्षा दी थी—

"**पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाणः।**" (५/५/२८)।

"**योगिनां साम्परायविधिमनुशिक्षयन्।**" (५/६/६)।

"**यो वै चचार समदृग्जडयोगचर्याम्।**" (२/७/१०)।

श्रीमद्भागवतपुराण में भगवान् ऋषभदेव को **योगेश्वर** और **नानायोगचर्याचरण** कहा गया है—

"**भगवानृषभदेवो योगेश्वरः।**" (५/४/३)।

"**नानायोगचर्याचरणो भगवान् कैवल्यपतिर्ऋषभो---।**" (५/५/३५)।

भगवान् ऋषभदेव के ज्येष्ठपुत्र भरत को भी 'महायोगी' विशेषण से विभूषित किया गया है—"**महायोगी भरतो ज्येष्ठः**" (५/४/९)।

भगवान् ऋषभदेव का दूसरा नाम 'आदिनाथ' है, क्योंकि वे जैनपरम्परा के चौबीस तीर्थंकरों में आदि तीर्थंकर हैं। इन आदिनाथ ऋषभदेव को वैदिकपरम्परा के प्रसिद्ध योगशास्त्र **हठयोगप्रदीपिका** में हठयोगविद्या के उपदेशक होने के कारण नमस्कार किया गया है—

श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै, येनोपदिष्टा हठयोगविद्या।
विभ्राजते प्रोन्नतराजयोगमारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव॥[४४]

अनुवाद—"मैं श्री आदिनाथ को नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने उस हठयोगविद्या की शिक्षा दी, जो उन्नत राजयोग पर आरोहण के लिए नसैनी के समान है।"

---

४४. श्री हेमचन्द्र मोदी : 'योगमार्ग'/'अनेकान्त' वर्ष १/ किरण ८, ९, १० पृ. ५३७-५३८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१९

कादम्बरी-हर्षचरित (७वीं शती ई०) में क्षपणक, आर्हत, नग्नाटक, मयूरपिच्छधारी

सुप्रसिद्ध संस्कृतगद्यकवि बाणभट्ट राजा हर्ष (६०६-६४७ ई०) के समकालीन थे। इन्होंने अपने प्रसिद्ध गद्यकाव्य 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' में दिगम्बर जैन मुनियों के उल्लेख किये हैं। **कादम्बरी** के पूर्वभाग में शबरसेना का वर्णन करते हुए बाणभट्ट ने मोरपंख धारण किये हुए शबरों की उपमा मयूरपिच्छी धारण करनेवाले दिगम्बरजैन मुनियों से दी है—"**कैश्चित् क्षपणकैरिव मयूरपिच्छधारिभिः।**"[४५]

टीकाकार श्वेताम्बरचार्य श्री भानुचन्द्रगणी ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है—"**क्षपणकैरिव दिगम्बरैरिव मयूराणां बर्हिणां पिच्छानि छदानि धरन्तीत्येवंशीला धारिणस्तैः। भिल्ला अपि हतमयूरपिच्छधारिणो भवन्तीति श्लेषः।**"

आचार्य रामनाथ शर्मा 'सुमन' एवं राजेन्द्र कुमार शास्त्री ने भी ऐसी ही व्याख्या की है—"**कैश्चित् क्षपणकैः इव = जैनैः दिगम्बरैः इव। मयूरपिच्छवाहिभिः = मयूराणां शिखिनां पिच्छानि कलापान् वहन्ति धारयन्ति तच्छीलाः तैः।**" (कादम्बरी / प्रकाशक-साहित्य भण्डार, मेरठ)।

हर्षचरित (चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी १९९८ई०) में भी कई जगह दिगम्बरजैन मुनियों का निर्देश किया गया है—"**जैनैः आर्हतैः पाशुपतैः पाराशरिभिः।**" (उच्छ्वास २/ पृ.१०३)। "**शिक्षितक्षपणकवृत्तय इव वनमयूरपिच्छचयानुच्चिन्वन्तः।**" (उच्छ्वास २/ पृ.८३-८४)। "**अभिमुखमाजगाम शिखिपिच्छलाञ्छनो नग्नाटकः।**" (उच्छ्वास ५/पृ.२६१-२६२)।

इन उद्धरणों में बाणभट्ट ने दिगम्बरजैन मुनियों को 'मयूरपिच्छधारी', 'क्षपणक' 'आर्हत', 'जैन' और 'नग्नाटक' (नग्नभ्रमण करनेवाला) शब्दों से निर्दिष्ट किया है।

हर्षचरित के निम्नलिखित कथन में दिगम्बरजैन मुनियों को 'आर्हत' नाम से तथा श्वेताम्बरमुनियों को 'श्वेतपट' नाम से वर्णित किया है—"**तरुमूलानि निषेवमाणैर्वीतरागैरार्हतैर्मस्करिभिः श्वेतपटैः पाण्डुरभिक्षुभिर्भागवतैर्वर्णिभिः केशलुञ्चनैः कापिलैर्जैनैर्लोकायतिकैः।**" (उच्छ्वास/८/पृ.४२२-४२३)।

श्री शङ्करकवि ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—"**अर्हन्देवता येषां ते आर्हतास्तैर्नग्नक्षपणकैः। मस्करिभिः परिव्राजकैः। श्वेतपटैः श्वेतोर्णाकम्बलिवासोभिः नग्नक्षपणकभेदैः। पाण्डुरभिक्षुभिस्त्यक्तकाषायैः।**"

---

४५. कादम्बरी/पूर्वभाग/पृ.१०६/ प्रकाशक-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२०

भर्तृहरि-वैराग्यशतक (७०० ई०) में पाणिपात्र, दिगम्बर

भर्तृहरि ईसा के सातवें शतक के कवि थे। उनके शतकत्रय बहुत प्रसिद्ध हैं: नीतिशतक, शृंगारशतक और वैराग्यशतक। यद्यपि वे शिवभक्त थे, तथापि उन्होंने वैराग्य-शतक में स्वयं शम्भु को सम्बोधित करते हुए 'पाणिपात्र दिगम्बर मुनि' बनने की भावना व्यक्त की है—

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो! भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः॥ ८७॥

वैराग्यशतक के एक अन्य श्लोक में वे कहते हैं—

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं,
विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकमचपलं तल्पमस्वल्पमुर्वी।
येषां निःसङ्गताङ्गीकरण-परिणतस्वात्मसन्तोषिणस्ते,
धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्म निर्मूलयन्ति॥ ९६॥

अनुवाद—"वे धन्य हैं, जिनका हाथ ही पवित्र भिक्षापात्र है, भ्रमण द्वारा प्राप्त भिक्षा ही जिनका अक्षय भोजन है, विस्तीर्ण दशों दिशाएँ ही जिनका अचंचल वस्त्र है, विशाल पृथ्वी ही जिनकी शय्या है, जो अनासक्त हो जाने से स्वात्म सन्तुष्ट रहते हैं तथा दैन्यभाव का त्यागकर कर्मों का विनाश करते हैं।"

भर्तृहरि का दिगम्बरजैन मुनियों के प्रति यह बहुमान सूचित करता है कि उनके समय में उत्तरभारत में दिगम्बर जैन मुनि बड़ी संख्या में विहार करते थे और उनकी चर्या बहुत प्रभावशाली थी।

२१

(वैदिक) पद्ममहापुराण में निर्ग्रन्थ, क्षपण

(वैदिक) पद्ममहापुराण में **राजा वेन** का उपाख्यान आया है। वह चौदह मनुओं में से 'स्वायम्भुव' नामक प्रथम मनु का वंशज था। विष्णुपुराण में उसकी वंश-परम्परा इस प्रकार बतलायी गयी है : ब्रह्मा की आत्मा से उत्पन्न स्वायम्भुव मनु > उत्तानपाद > ध्रुव > शिष्टि > रिपु > चाक्षुष > मनु (छठे मनु, जो चाक्षुष के पुत्र होने के कारण 'चाक्षुषमनु' कहलाये) > कुरु > अङ्ग > वेन > पृथु।[४६] इस तरह राजा

४६. विष्णुपुराण / अंश १ / अध्याय ७ / श्लोक १६-१९, अंश १/ अध्याय ११ / श्लोक १-३, अंश १ / अध्याय १३ / श्लोक १-९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

वेन स्वायम्भुव मनु की वंशपरम्परा में 'अंग' का पुत्र और 'पृथु' (वैन्य) का पिता था।[४७]

राजा वेन चाक्षुष (छठे) मन्वन्तर और वैवस्वत (सातवें) मन्वन्तर के सन्धिकाल में हुआ था, जैसा कि निम्नलिखित वाक्यों में कहा गया है—"**चाक्षुष-वैवस्वतयोर्मन्वन्तरयोः सन्धौ लोकोऽयं प्रजापालविरहेण भृशमसीदत्। तत्र ऋषयः समेत्य मन्त्रयाञ्चक्रिरे धर्मज्ञं जयपण्डितं वेनमुपलम्य तं पृथ्वीराज्येऽभिषिषिचुः। स च धर्मतः प्रजाः स्वाः प्रजा इव चिरं शशास यावदस्य सुशङ्खर्षेः शापान्मतविपर्ययो नाभूत्।**"[४८]

अनुवाद—"चाक्षुष और वैवस्वत-मन्वन्तरों के सन्धिकाल में प्रजापालक के अभाव में प्रजा बड़ी दुःखी थी। तब ऋषियों ने मिलकर सलाह की और धर्मज्ञ, जयपण्डित वेन को पृथ्वी के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। उसने प्रजा का धर्मपूर्वक अपनी ही सन्तान के समान चिरकाल तक पालन किया, जब तक कि सुशंख ऋषि के शाप से उसकी बुद्धि विपरीत नहीं हो गयी।"

मनुओं की संख्या १४ बतलायी गयी है। एक मनु का काल मनुष्यों के ४३ लाख, बीस हजार (४३,२०,०००) वर्षों का होता है। इस समय सातवाँ मन्वन्तर (सातवें मनु वैवस्वत का काल) चल रहा है। इससे सिद्ध होता है क राजा वेन आज से कई हजार वर्ष पहले हुआ था।

विष्णुपुराण में कहा गया है कि "मृत्यु की 'सुनीथा' नाम को जो प्रथम पुत्री थी, वह 'अंग' के साथ व्याही गयी थी। उसी से वेन का जन्म हुआ। वह 'मृत्यु' की कन्या का पुत्र अपने मातामह (नाना) के दोष से स्वभाव से ही दुष्टप्रकृति का था। ऋषियों द्वारा राज पद पर अभिषिक्त किये जाते ही उसने घोषणा कर दी कि कोई भी मनुष्य न यज्ञ करे, न दान, न हवन। मेरे अलावा यज्ञ का भोक्ता और कौन हो सकता है? मैं ही यज्ञपति प्रभु हूँ।" (विष्णुपुराण / अंश १/ अध्याय १३ / श्लोक ११-१४)।

ऋषियों ने उसे बहुत समझाया, किन्तु जब वह नहीं माना, तब कुद्ध होकर उन्होंने मन्त्रपूत कुशों से उसका वध कर दिया। (वहीं / अंश १ / अध्याय १३ / श्लोक २६-२९)।

'श्रीमद्भागवतपुराण' (स्कन्ध ४ / अध्याय १४ / श्लोक १-४६) एवं 'महाभारत' (शान्तिपर्व / अध्याय ५९ / श्लोक ९९-१००) में भी राजा वेन का ऐसा ही चरित्र और

४७. वही / अंश १ / अध्याय १३ / श्लोक ११, ३८-३९।

४८. पद्ममहापुराण / भाग १-सृष्टिखण्ड / भूमिका : प्रो. डॉ. चारुदेव शास्त्री / पृ. १६।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इसी रीति से उसकी मृत्यु का वर्णन किया गया है। किन्तु, पद्ममहापुराण में उसके वध का वर्णन नहीं है, अपितु यह वर्णन है कि ऋषियों ने उसके दाहिने हाथ का मन्थन किया, जिससे उसके पृथु नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। वह अत्यन्त ज्ञानी और दयालु था। उसके पुण्यप्रसाद से राजा वेन धर्म और अर्थ का ज्ञाता हो गया और चक्रवर्तीपद प्राप्त कर उसका उपभोग करने के बाद भगवान् विष्णु की कृपा से वैष्णवलोक में पहुँच गया। (पद्ममहापुराण / भाग २ / भूमिखण्ड / अध्याय ३८ श्लोक ३८-४१)।

इन अनेक पुराणों और 'महाभारत' में राजा वेन की कथा वर्णित होने से सिद्ध है कि वह एक प्रसिद्ध और उल्लेखनीय चरित्रवाला राजा था। उसके यज्ञादि-वैदिकधर्मविरोधी चरित्र से ज्ञात होता है कि उसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था। इसकी पुष्टि उपर्युक्त वैदिक पद्ममहापुराण से होती है। किन्तु उक्त पुराण के कर्त्ता ने जैनधर्म को हेय सिद्ध करने के लिए एक काल्पनिक कथा गढ़कर उसे इस तरह प्रस्तुत किया है, जैसे वह धर्म नहीं, अपितु पाप हो और जैसे राजा वेन ने उसे जानबूझकर ग्रहण नहीं किया था, अपितु सुशंख ऋषि के पूर्वशाप-वश बुद्धि भ्रष्ट हो जाने के कारण ग्रहण किया था। (वैदिक) पद्ममहापुराण के कर्त्ता ने पद्ममहापुराण (भाग २ / खण्ड २-भूमिखण्ड / अध्याय ३७-३८) में वेन-कथा का वर्णन इस प्रकार किया है—

जब अंग का पुत्र और स्वायंभुव मनु का वंशज राजा वेन शासन कर रहा था तब एक पुरुष छद्मलिंग धारण करके आया। उसका स्वरूप नग्न था, शरीर विशाल था, सिर मुड़ा हुआ था और देह से महाप्रभा प्रस्फुटित हो रही थी। उसकी काँख में मयूरपिच्छी दबी हुई थी, हाथ में नारियल से निर्मित कमंडलु था और वह वैदिक धर्म में दोष दर्शानेवाला असत् शास्त्र पढ़ रहा था—

पुरुषः कश्चिदायातश्छद्मलिङ्गधरस्तदा।
नग्नरूपो महाकायः शिरोमुण्डो महाप्रभः॥ २/२/३७/५॥

मार्जनीं शिखिपत्राणां कक्षायां स हि धारयन्।
गृहीतं पानपात्रं तु नारिकेलमयं करे॥ २/२/३७/६॥

पठमानो ह्यसच्छास्त्रं वेदधर्मविदूषकम्।
यत्र वेनो महाराजस्तत्रायातस्त्वरान्वितः॥ २/२/३७/७॥

वह पापी, राजा वेन की राजसभा में प्रविष्ट हो गया। उसे देखकर वेन ने प्रश्न किया-"तुम कौन हो? यहाँ क्यों आये हो? तुम्हारा धर्म क्या है? तुम्हारा आचार क्या है? सब बतलाओ।" तब वह पुरुष उत्तर देता है—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अर्हन्तो देवता यत्र निर्ग्रन्थो दृश्यते गुरुः।
दया चैव परो धर्मस्तत्र मोक्षः प्रदृश्यते॥ २/२/३७/१७॥

दर्शनेऽस्मिन्न सन्देह आचारान्प्रवदाम्यहम्।
यजनं याजनं नास्ति वेदाध्ययनमेव च॥ २/२/३७/१८॥

नास्ति सन्ध्या तपो दानं स्वधास्वाहाविवर्जितम्।
हव्यकव्यादिकं नास्ति नैव यज्ञादिका क्रिया॥ २/२/३७/१९॥

पितृणां तर्पणं नास्ति नातिथिर्वैश्वदेवकम्।
क्षपणस्य वरा पूजा अर्हतो ध्यानमुत्तमम्॥ २/२/३७/२०॥

अयं धर्मसमाचारो जैनमार्गे प्रदृश्यते।
एतत्ते सर्वमाख्यातं निजधर्मस्य लक्षणम्॥ २/२/३७/२१॥

अनुवाद—"हम अर्हन्त को देवता और निर्ग्रन्थ मुनि को गुरु मानते हैं, अहिंसा हमारा परमधर्म है और मोक्ष की प्राप्ति परमलक्ष्य। हमारे धर्म में यजन-याजन नहीं होता, न ही वेदों का अध्ययन। न हम सन्ध्या करते हैं, न (ब्राह्मणों जैसा) तप और दान। हम स्वाहापूर्वक हवि-प्रदान भी नहीं करते और स्वधापूर्वक पितरों का तर्पण नहीं करते। अतिथियों का स्वागत-सत्कार भी इसमें आवश्यक नहीं होता, न विश्वेदेवों को बलि प्रदान की जाती है। हमारे धर्म में क्षपणक (दिगम्बर मुनि) की पूजा और अर्हन्त का ध्यान ही श्रेष्ठ माना जाता है। ये ही हमारे धर्म के लक्षण हैं।"

उस महापापी जैन पुरुष के द्वारा इस प्रकार सम्बोधित किये जाने पर राजा वेन ने उसके चरणों में नमस्कार कर वैदिकधर्म का परित्याग कर दिया और जैनधर्म स्वीकार कर लिया। अपने पिता अंग के रोकने पर भी वह नहीं माना। उसके शासन में सम्पूर्ण प्रजा वैदिकधर्म को छोड़कर पापमय हो गई—

एवं सम्बोधितो वेनः पापभावं गतः किल।
पुरुषेण तेन जैनेन महापापेन मोहितः॥ २/२/३८/१॥

नमस्कृत्य ततः पादौ तस्यैव च दुरात्मनः।
वेदधर्मं परित्यज्य सत्यधर्मादिकां क्रियाम्॥ २/२/३८/२॥

सुयज्ञानां निवृत्तिः स्याद्वेदानां हि तथैव च।
पुण्यशास्त्रमयो धर्मस्तदा नैव प्रवर्तितः॥ २/२/३८/३॥

सर्वपापमयो लोकः सञ्जातस्तस्य शासनात्।
नैव यागाश्च वेदाश्च धर्मशास्त्रार्थमुत्तमम्॥ २/२/३८/४॥

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

न दानाध्ययनं विप्रास्तस्मिञ्छासति पार्थिवे।
एवं धर्मप्रलोपोऽभून्महत्पापं प्रवर्तितम्॥ २/२/३८/५॥

अङ्गेन वार्यमाणस्त्वन्यथा कुरुते भृशम्।
न ननाम पितुः पादौ मातुश्चैव दुरात्मवान्॥ २/२/३८/६॥

यह पद्ममहापुराण छठी शती ई० के बाद रचा गया है और इसमें दिगम्बरजैन मुनि द्वारा हजारों वर्ष पूर्व हुए स्वायंभुव मनु के वंशज तथा राजा अंग के पुत्र वेन को जैनधर्म में दीक्षित किये जाने का वर्णन है। इससे सिद्ध है वैदिक पुराणकार दिगम्बरजैनधर्म को बहुत प्राचीनकाल से चला आया हुआ मानते थे। यदि उसका प्रवर्तन विक्रम की छठी शताब्दी में हुआ होता और आचार्य कुन्दकुन्द ने किया होता, तो छठी शताब्दी ई० के बाद के वैदिक पुराणकार उसे इतने प्राचीन होने का श्रेय न देते और छठी शताब्दी के बाद के किसी हिन्दू राजा को कुन्दकुन्द नाम के पुरुष द्वारा जैनधर्म में दीक्षित किये जाने की कथा वर्णित करते।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि राजा वेन को जिस मुनि के द्वारा जैनधर्म की दीक्षा दिये जाने की बात कही गई है, उसे नग्न, मयूरपिच्छीधारी और हाथ में नारिकेलमय कमण्डलु लिये हुए बतलाया गया है तथा उसे 'क्षपणक' एवं 'निर्ग्रन्थ' शब्दों से सम्बोधित किया गया है, इससे सुनिश्चित होता है कि वह श्वेताम्बरमत का जिनकल्पी साधु नहीं था, अपितु दिगम्बर जैन साधु ही था और वैदिक मतानुयायी समाज में दिगम्बरजैन मुनि ही 'क्षपणक' एवं 'निर्ग्रन्थ' नामों से प्रसिद्ध थे।

२२
कूर्मपुराण (७०० ई०) में निर्ग्रन्थ

कूर्मपुराण ई० सन् ७०० में रचित माना गया है। इसमें दो भाग हैं: पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। द्वितीयभाग अर्थात् उत्तरार्ध के इक्कीस वें अध्याय में कहा गया है—

वृद्धश्रावकनिर्ग्रन्थाः पञ्चरात्रविदो जनाः।
कापालिकाः पाशुपताः पाषण्डा ये च तद्विधाः॥ २/२१/३२॥

यस्याश्नन्ति हवींष्येते दुरात्मानस्तु तामसाः।
न तस्य तद्भवेच्छ्राद्धं प्रेत्य चेह फलप्रदम्॥ २/२१/३३॥

अनुवाद—"वृद्धश्रावक (दिगम्बरजैन-धर्मावलम्बी एलक-क्षुल्लक),[४९] निर्ग्रन्थ (दिगम्बरजैन मुनि), पञ्चरात्र-ग्रंथों के पाठी, कापालिक, पाशुपत तथा इसी प्रकार के

४९. 'एलक' शब्द शुद्ध है, 'ऐलक' नहीं। पं० हीरालाल जी जैन सिद्धान्तशास्त्री ने **ऐलक** शब्द को 'अचेलक' का प्राकृतरूप माना है। वे कहते हैं कि '**कगचजतदपयवां प्रायो लुक्**' (हैम

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अन्य पाषण्ड, जिसके श्राद्ध में हविभक्षण करते हैं, उसके लिए किया गया श्राद्ध इस लोक और परलोक में फलप्रद नहीं होता।''

प्राकृतशब्दानुशासन/८/१/१७७) इस नियम के अनुसार 'अचेलक' के 'च्' का लोप हो जाने पर 'अ' शेष रहा और 'अएलक' इस स्थिति में वृद्धिसन्धि (अ+ए=ऐ) होने पर 'ऐलक' पद बन गया। नञ्समास में 'अ' (नञ्) से 'ईषद्' अर्थ लेने पर 'ऐलक' शब्द अल्पवस्त्रधारी (केवल एक कौपीनधारी) उत्कृष्ट (एकादशप्रतिमावलम्बी) श्रावक का अर्थ देता है। (देखिये, वसुनन्दि-श्रावकाचार/भारतीय ज्ञानपीठ काशी/१९५२ ई०/प्रस्तावना/पृ०६३)। क्षुल्लक श्री जिनेन्द्र वर्णी ने भी 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश' (भाग १/पृ.४६८-६९) में पण्डित जी के इस मत का उल्लेख कर इसे मान्यता प्रदान की है। किन्तु, पण्डित जी का यह मत समीचीन नहीं है। उपर्युक्त नियम के अनुसार 'च्' का लोप होने से अवशिष्ट 'ए' उद्वृत्त स्वर है। अतः '**स्वरस्योद्वृत्ते**' (हैम प्राकृतशब्दानुशासन/८/१/८) सूत्र के अनुसार पूर्ववर्ती 'अ' के साथ उसकी सन्धि नहीं हो सकती, जैसे **निशाचरः > निसाअरो, रजनीचरः > रयणीअरो**। अतः प्राकृत में 'ऐलक' शब्द नहीं बन सकता। यदि सन्धि मानी भी जाय तो भी प्राकृत में 'ऐ', 'औ' स्वरों का अस्तित्व न होने से 'ऐलक' शब्द सिद्ध होना असंभव है। प्राकृत ग्रन्थों में संस्कृत 'अचेलक' का 'अएलक' या 'ऐलक' रूप मिलता भी नहीं है, सर्वत्र 'च' ज्यों का त्यों उपलब्ध होता है, यथा—'**अचेलमण्हाणं**' (प्र.सा./गा.३/८), '**आचेलकमण्हाणं**' (मूला./गा.३), '**आचेलक्कुद्देसिय**' (भ.आ./गा. ४२३), '**अचेलगो य जो धम्मो**' (उत्त. सूत्र/२३/२९)। अतः 'ऐलक' शब्द न तो प्राकृतभाषा का शब्द है, न ही संस्कृत का। संस्कृत में 'एलक' शब्द उपलब्ध होता है, किन्तु उसका अर्थ एडक (मेढ़ा) है (आप्टेकृत संस्कृत-हिन्दी-कोश)।

इसके अतिरिक्त अल्पचेलक-अर्थ में 'अचेलक' शब्द का प्रयोग तो श्वेताम्बर-आगमों में भी नहीं हुआ है, दिगम्बर-आगमों में होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। उत्तरवर्ती श्वेताम्बर वृत्तिकारों ने अवश्य मुनियों की सचेलता को आगमोक्त सिद्ध करने के लिए 'अचेलक' शब्द को अल्पचेलक-अर्थ में प्रयुक्त बतलाने की चेष्टा की है, किन्तु वह असमीचीन है। (देखिये, अध्याय ३/प्रकरण १/शीर्षक ६)। यदि दिगम्बरमत में भी 'अचेलक' शब्द को 'अल्पचेलक' अर्थ का प्रतिपादक माना जाय, तो मुनि के लिए विहित 'आचेलक्य' मूलगुण से 'अल्पचेलत्व' मूलगुण अर्थ प्रतिपादित होने से कोई तर्क नहीं रोक सकता, जिससे दिगम्बरजैन-मत में भी सवस्त्रमुक्ति की मान्यता का सिद्ध होना अनिवार्य है। अतः 'अचेलक' शब्द को अल्पचेलक अर्थ का प्रतिपादक किसी भी तरह नहीं माना जा सकता।

प्राचीन ग्रन्थों में ग्यारहवीं प्रतिमा के क्षुल्लक-ऐलक ये दो भेद भी नहीं मिलते। आचार्य कुन्दकुन्द ने उत्कृष्ट श्रावकों के लिंग को उत्कृष्ट लिंग कहा है, किन्तु क्षुल्लक-ऐलक शब्दों का प्रयोग नहीं किया (सुत्तपाहुड/गा.२१)। स्वामी समन्तभद्र ने भी क्षुल्लक-ऐलक भेद किये बिना ग्यारहवीं-प्रतिमाधारी श्रावक को **चेलखण्डधरः** कहा है और

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कूर्मपुराण (पूर्वार्ध/अध्याय ३०) के निम्नलिखित श्लोक में भी निर्ग्रन्थों का उल्लेख है। यह मत्स्यपुराण के पूर्वोक्त श्लोक से साम्य रखता है—

काषायिणोऽथ निर्ग्रन्थास्तथा कापालिकाश्च ये।
वेदविक्रयिणाश्चान्ये तीर्थविक्रयिणः परे॥ १/३०/१६॥

अनुवाद—"(कलियुग उपस्थित होने पर) कोई काषायवस्त्रधारी (बौद्ध) साधु होगा, कोई निर्ग्रन्थ (नग्न) तथा कोई कापालिक, कोई वेदों का विक्रय करेगा और कोई तीर्थों का।"

टीकाकार प्रभाचन्द्र ने इसका अर्थ कौपीन (लँगोटी) मात्र धारण करनेवाला किया है तथा उसे 'आर्य' शब्द से अभिहित किया है—"**चेलखण्डधरः कौपीनमात्रवस्त्रखण्डधारकः आर्यलिङ्गधारीत्यर्थः।**" (र.क.श्रा./ कारिका १४७)। पं० आशाधर जी ने भी उसे 'आर्य कहा है। (सा.ध./ ७/४८)।

सर्वप्रथम ७वीं शती ई० के रविषेणकृत पद्मपुराण (१००/३२-४१) में कौपीन-अंशुकधारी उत्कृष्ट श्रावक के लिए 'क्षुल्लक' शब्द का प्रयोग किया गया है। तत्पश्चात् १०वीं शती ई० के हरिषेणकृत 'बृहत्कथाकोश' में भी 'क्षुल्लक' शब्द व्यवहृत हुआ है। (७३. यशोधर-चन्द्रमती कथानक/श्लोक २३७-२३८)। किन्तु १२वीं शती ई० के आचार्य वसुनन्दी ने अपने श्रावकाचार (गाथा ३०१-३१०) में क्षुल्लक-ऐलक शब्दों का प्रयोग न कर एकादशप्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावकों के प्रथमोत्कृष्ट और द्वितीयोत्कृष्ट, ये दो भेद किए हैं। सर्वप्रथम १६वीं शती ई० में पं० राजमल्ल जी ने अपनी **लाटीसंहिता** (६/५५) में द्वितीयोत्कृष्ट श्रावक के लिए **एलक** शब्द का प्रयोग किया है—"**उत्कृष्टः श्रावको द्वेधा क्षुल्लकश्चैल-कस्तथा।**" इससे यह निर्णय युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि 'चेलखण्डधरः' के साथ लोक में 'खण्डचेलकः' शब्द भी प्रचलित हुआ और प्राकृत के नियमानुसार स्वरमध्यग 'च्' का लोप होने पर 'खंडएलक' शब्द का विकास हुआ। पश्चात् प्रयत्नलाघव की प्रवृत्तिवश केवल 'एलक' शब्द का प्रयोग होने लगा। संस्कृत में शिव और परशुराम के अर्थ में 'खण्डपरशुः' शब्द उपलब्ध होता है। (आप्टेकृत संस्कृत-हिन्दी कोश)। 'खण्डचेलकः' ऐसा ही शब्द है। अथवा **आर्य** शब्द **आर्यक > आरक > एरक > एलक**, इस तरह 'एलक' रूप में विकसित हुआ है। 'एलक' शब्द का 'ऐलक'-रूप में प्रचलन सन्धिविच्छेद करनेवालों की कृपा से हुआ है। 'लाटीसंहिता' में 'एलक' शब्द का प्रयोग केवल तीन स्थानों में सन्धिपूर्वक हुआ है, यथा-**क्षुल्लकश्चैलकः** (६/५५) **तत्रैलकः** (६/५६), **चैलकस्य** (६/५८)। यहाँ तीनों जगह च+एलकः, तत्र+एलकः, च+एलकः इस प्रकार सन्धिविग्रह किया जाना चाहिए, किन्तु च+ऐलकः, तत्र+ऐलकः ऐसा विच्छेद कर लिया गया, जो समीचीन नहीं है। उच्चारण भी 'एलक' ही किया जाता है, 'ऐलक' (अइलक) नहीं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२३

ब्रह्माण्डपुराण में नग्न, निर्ग्रन्थ

ब्रह्माण्डपुराण (उपोद्घातपाद ३/अध्याय १४) में भी कहा गया है कि श्राद्धकर्म में नग्नादि के दर्शन नहीं करना चाहिए। नग्नादि में वृद्धश्रावकों, निर्ग्रन्थों, बौद्धों, जीवकों और कार्पटों की गणना की गई है—

नग्नादयो न पश्येयुः श्राद्धकर्म व्यवस्थितम्।
गच्छन्त्येतैस्तु दृष्टानि न पितॄंश्च पितामहान्॥ ३/१४/३४॥

सर्वेषामेव भूतानां त्रयी संवरणं स्मृतम्॥ ३/१४/३५॥

ता ये त्यजन्ति सम्मोहात्ते वै नग्नादयो जनाः॥ ३/१४/३६॥

वृद्धश्रावकनिर्ग्रन्थाः शाक्या जीवककार्पटाः॥ ३/१४/३९॥

ये धर्मं नानुवर्तन्ते ते वै नग्नादयो जनाः॥ ३/१४/४०॥

इन श्लोकों में वेदत्रयीरूप आवरण का परित्याग कर देनेवालों को 'नग्नादि' कहा गया है। ध्यान देने योग्य है कि यहाँ सब के लिए 'नग्नाः' शब्द का प्रयोग न कर 'नग्नादयः' का प्रयोग किया गया है। यह स्पष्ट करता है कि 'नग्न' शब्द से 'निर्ग्रन्थ' संकेतित किये गये हैं और 'आदयः' पद से वृद्धश्रावक, शाक्य (बौद्ध) आदि।

२४

लिङ्गपुराण में नग्न ऋषभ

इस पुराण के प्रथमभाग के अन्तर्गत **भारतवर्षकथन** नामक सैंतालीसवें अध्याय में **भारतवर्ष** नाम की उत्पत्ति का हेतु बतलाते हुए कहा गया है—

नाभेर्निसर्गं वक्ष्यामि हिमाङ्केस्मिन्निबोधत।
नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मरुदेव्यां महामतिः॥ १/४७/१९॥

ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूजितम्।
ऋषभाद् भारतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः॥ १/४७/२०॥

सोऽभिषिच्याथ ऋषभो भरतं पुत्रवत्सलः।
ज्ञानवैराग्यमाश्रित्य जित्वेन्द्रियमहोरगान्॥ १/४७/२१॥

सर्वात्ममनात्मनि स्थाप्य परमात्मानमीश्वरम्।
नग्नो जटी निराहारो चीरीध्वान्तगतो हि सः॥ १/४७/२२॥[५०]

५०. 'चीरिध्वान्तगतः' होना चाहिए। 'चीरि' का अर्थ है = नेत्रों पर पड़ा हुआ आवरण (वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत-हिन्दी-कोश)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

निराशस्त्यक्तसन्देहः शैवमाप परं पदम्।
हिमाद्रेर्दक्षिणं वर्षं भारताय न्यवेदयत्॥ १/४७/२३॥

तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः।
भरतस्यात्मजो विद्वान् सुमतिर्नामधार्मिकः॥ १/४७/२४॥

बभूव तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः सन्यवेशयत्।
पुत्रसङ्क्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः॥ १/४७/२५॥

अनुवाद—"हिमालय से चिह्नित इस देश के महाराज नाभि के वंश का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो। महामति नाभि ने मरुदेवी से 'ऋषभ' नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो राजाओं में श्रेष्ठ और समस्त क्षत्रियों में पूजित थे। ऋषभ से सौ पुत्रों में ज्येष्ठ भरत का जन्म हुआ। पुत्रवत्सल ऋषभ ने भरत का राज्याभिषेक किया और ज्ञानवैराग्य का आश्रय लेकर, इन्द्रियरूपी महाविषधरों पर विजय प्राप्त कर, आत्मा को ही परमात्मा या ईश्वर मानकर नग्न और जटाधारी हो, निराहार रहने लगे और इस प्रकार चीरिजनित (ज्ञानरूपी नेत्रों पर पड़े हुए परदे से उत्पन्न) अन्धकार से मुक्त एवं इच्छातीत और सन्देहातीत होकर मोक्षपद प्राप्त कर लिया। यतः उन्होंने हिमालय के दक्षिण में विद्यमान वर्ष (देश) भरत को दे दिया था, इसलिए भरत के नाम पर उसका नाम 'भारतवर्ष' पड़ा। भरत के सुमति नाम का धार्मिक पुत्र हुआ। उसे उन्होंने अपना राज्य सौंप दिया और वन को चले गये।"

लिङ्गपुराण के इन श्लोकों में भगवान् ऋषभदेव को स्पष्ट रूप से 'नग्न' बतलाया गया है, जिससे सिद्ध होता है कि जैनेतर भारतीय सम्प्रदायों में जैन तीर्थंकर अचेलतीर्थ के प्रवर्तक के रूप में ही प्रसिद्ध थे। इससे दिगम्बरों की इस मान्यता की पुष्टि होती है कि भगवान् महावीर ने सर्वथा अचेल निर्ग्रन्थसंघ का ही प्रवर्तन किया था।

लिङ्गपुराण (भाग १/अध्याय ३४) में नग्नता को लेकर एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण श्लोक कहा गया है—

इन्द्रियैरजितैर्नग्नो दुकूलेनापि 'संवृतः।
तैरेव संवृतो गुप्तो न वस्त्रं कारणं स्मृतम्॥ १/३४/१४॥

अनुवाद—"जिसने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं की है, वह वस्त्रों से आच्छादित होने पर भी नग्न (निर्लज्ज) है, किन्तु जिसने इन्द्रियों को वश में कर लिया है, वह नग्न रहते हुए भी अनग्न (लज्जावान्) है। अर्थात् वस्त्रधारण करने से कोई सलज्ज नहीं बनता और वस्त्रत्याग देने से निर्लज्ज नहीं होता।"

एक अन्य श्लोक में कहा गया है—

जटिनो मुण्डिनश्चैव नग्ना नाना प्रकारिणः।
सम्पूज्याः शिववन्नित्यं मनसा कर्मणा गिरा॥ १/३४/३१॥

अनुवाद—"जो नाना प्रकार के जटाधारी या मुण्डी नग्न साधु हैं, वे शिव के समान मन, वचन और कर्म से पूजनीय हैं।"

इस उक्ति के द्वारा लिङ्गपुराण में दिगम्बरजैन मुनियों के प्रति भी आदरभाव सूचित किया गया है।

ब्रह्माण्डपुराण के द्वितीय (अनुषङ्ग) पाद के अन्तर्गत २७वें अध्याय में भी उपर्युक्त भाववाले दो श्लोक मिलते हैं—

नग्ना एव हि जायन्ते देवता मुनयस्तथा।
ये चान्ये मानवा लोके सर्वे जायन्त्यवाससः॥ २/२७/११८॥

इन्द्रियैरजितैर्नग्ना दुकूलेनापि संवृताः।
तैरेव संवृतो गुप्तो न वस्त्रं कारणं स्मृतम्॥ २/२७/११९॥

इन श्लोकों में सभी देव-मानवों को जन्म से नग्न ही बतलाया गया है और मुनियों को भी प्रमुखतः नाग्न्यलिङ्गवाला ही कहा गया है तथा यह मनौवैज्ञानिक तथ्य उद्घाटित किया गया है कि इन्द्रियों का संवरण ही वास्तविक आवरण है।

२५

न्यायकुसुमाञ्जलि (९८४ ई०) में निरावरण, दिगम्बर

इस प्रसिद्ध न्यायग्रंथ के कर्त्ता उदयनाचार्य ९८४ ई० में हुए थे। इस ग्रन्थ में पृष्ठ १६ पर उन्होंने निरावरण जैन मुनियों को 'दिगम्बर' शब्द से अभिहित किया है—"**निरावरणा इति दिगम्बराः।**"[५१]

२६

न्यायमञ्जरी (१००० ई०) में दिगम्बर

इस ग्रन्थ के लेखक जयन्तभट्ट का काल १००० ई० के लगभग है। वे पृष्ठ १६७ पर लिखते हैं—

"**क्रिया तु विचित्रा प्रत्यागमं भवतु नाम। भस्मजटापरिग्रहो दण्डकमण्डलुग्रहणं वा रक्तपटधारणं वा दिगम्बरतां वावलम्ब्यतां कोऽत्र विरोधः।**"[५२]

---

५१. पं० अजितकुमार शास्त्री : श्वेताम्बरमत-समीक्षा / पृ. १६८।
५२. वही / पृ. १६८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"क्रिया तो अलग-अलग मतों में भिन्न-भिन्न होती है। अतः भस्म लगायी जाय, जटा रखी जाय, दंड-कमण्डलु ग्रहण किया जाय अथवा रक्तपट धारण किये जायँ या दिगम्बरत्व का ही अवलम्बन किया जाय, इसमें क्या विरोध है?"

इस कथन में जयन्तभट्ट ने रक्तपटधारी बौद्धभिक्षुओं के साथ दिगम्बरधारी दिगम्बर-जैन मुनियों का उल्लेख किया है।

२७

'प्रबोधचन्द्रोदय' (१०६५ ई०) में विमुक्तवसन, क्षपणक, दिगम्बर

इस नाटक की रचना चन्देल राजा कीर्तिवर्मा के शासनकाल में कृष्णमिश्र नाम के दण्डी परिव्राजक ने की थी। कहते हैं कि सन् १०६५ ई० में यह उक्त राजा के सामने खेला भी गया था।[५३] इसमें साम्प्रदायिक विद्वेषवश जैन और बौद्ध धर्मों को घृणितरूप में प्रस्तुत किया गया है। यह कल्पना की गई है कि इन धर्मों की सृष्टि 'महामोह' ने लोगों को वैदिकधर्म से च्युत करने के लिए की थी। इसमें 'महामोह', 'मिथ्यादृष्टि,' 'शान्ति,' 'श्रद्धा,' 'करुणा' आदि भावों का मानवीकरण (personification) किया गया है। तृतीय अङ्क में 'शान्ति' और 'करुणा' 'श्रद्धा' को ढूँढ़ती हैं। उन्हें सन्देह होता है कि 'श्रद्धा' 'महामोह' के भय से पाषण्डों (जैन और बौद्ध धर्मों) के घरों में छिप कर रह रही है, अर्थात् 'महामोह' के वशीभूत हो लोग जैन और बौद्ध धर्मों में श्रद्धा करने लगे हैं। अतः वे उसे वहीं ढूँढ़ने का विचार करती हैं। इतने में एक दिगम्बरजैन मुनि दिखाई देते हैं।

'करुणा' भयभीत होकर 'शान्ति' से कहती है-"**सखि! राक्षसो राक्षसः।**"

'शान्ति' पूछती है—"**कोऽसौ राक्षसः?**" (कहाँ है राक्षस?)

'करुणा' कहती है—"**सखि! पश्य पश्य। य एष गलन्मलपिच्छिल-बीभत्स-दुःप्रेक्ष्य-छविः, उल्लुञ्चित-चिकुर-विमुक्तवसनदुर्दर्शनः, शिखिशिखण्डपिच्छिकाहस्त इत एवाभिवर्तते।**"[५४] (सखि! देखो, देखो, यह है राक्षस, जिसका शरीर मैल से लिप्त होने के कारण घिनौना दिखाई दे रहा है, जो लुंचितकेश और वस्त्ररहित (नग्न) होने से बीभत्स लगता है तथा हाथ में मयूरपंखों की पिच्छिका लिए हुए है। वह इसी तरफ आ रहा है।)

---

५३. रामधारीसिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय / पृ.२१०।
५४. प्रबोधचन्द्रोदय / अंक ३ / पृ.११५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

फिर वे दोनों परस्पर उसके राक्षस न होकर पिशाच या नारकी होने की शंका करती हैं। किन्तु अन्त में 'शान्ति' देखकर और सोचकर कहती है—"**आः ज्ञातम्। महामोहप्रवर्तितोऽयं दिगम्बरसिद्धान्तः। तत्सर्वथा दूरे परिहरणीयमस्य दर्शनम्।**"[५५] (अच्छा, अच्छा, समझ गई। यह तो 'महामोह' द्वारा प्रवर्तित दिगम्बरसिद्धान्त है। तब तो इसके दर्शन दूर से ही परित्याज्य हैं।) यह कहकर मुँह फेर लेती है।

आगे चलकर उस क्षपणक (दिगम्बरजैन मुनि) का एक बौद्ध भिक्षु से वार्तालाप होता है। क्षपणक कहता है—"**अरेरे भिक्षुक! इतस्तावत्। किमपि पृच्छामि।**" (अरे भिक्षुक! इधर तो आओ। कुछ पूछना चाहता हूँ।)

भिक्षुक क्रुद्ध होकर कहता है—"**आः पाप पिशाचाकृते! किमेवं प्रलपसि?**" (अरे पापी, पिशाच के समान भयंकर सूरतवाले! क्या बकवास करता है?)

क्षपणक उत्तर देता है—"**अरे मुञ्च क्रोधम्। शास्त्रगतं पृच्छामि।**" (अरे भाई क्रोध छोड़ो। मैं शास्त्र की बात पूछना चाहता हूँ।)

भिक्षु व्यंग्य करता है—"**अरे क्षपणक! शास्त्रकथामपि वेत्सि त्वम्?**"[५६] (अरे क्षपणक! तू शास्त्रकथा भी जानता है?)

आगे चलकर क्षपणक बौद्ध भिक्षु को उपदेश देता है—"**तत् प्रियं ते विस्रब्धं भणामि। बुद्धानुशासनं परिहृत्यार्हतानुशासनमेवानुसृत्य दिगम्बरमतमेव धारयतु भवान्।**"[५७] (मैं तुम्हें प्रिय और विश्वसनीय सलाह देता हूँ। तुम बौद्धधर्म को छोड़, आर्हतधर्म (जैनधर्म) को अपनाकर दिगम्बरमत ही धारण कर लो।)

इसके बाद क्षपणक का एक कापालिक से वार्तालाप होता है। कापालिक कहता है—"**अरे क्षपणक! धर्मं तावदस्माकमवधारय।**"[५८] (अरे क्षपणक! तुम मेरा धर्म ग्रहण कर लो।)

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि मयूरपिच्छीधारी दिगम्बरजैन मुनि को बौद्ध भिक्षु और कापालिक 'क्षपणक' शब्द से सम्बोधित करते हैं, जिससे सिद्ध है कि दिगम्बरजैन मुनि ही 'क्षपणक' कहलाते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिकयुग से लेकर ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी तक के वैदिक एवं संस्कृत साहित्य में दिगम्बरजैन मुनियों के उल्लेख मिलते हैं।

५५. वही / अंक ३ / पृ. ११६।
५६. वही / अंक ३ / पृ. १२४।
५७. वही / अंक ३ / पृ. १२६।
५८. वही / अंक ३ / पृ. १३०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अतः दिगम्बरजैन-परम्परा वैदिककाल (कम से कम १५०० ई० पू०) से पूर्ववर्ती सिद्ध होती है।

२८

'क्षपणक' का अर्थ श्वेताम्बर-जिनकल्पी मुनि नहीं

'महाभारत' के उत्तङ्कोपाख्यान में जो 'नग्नक्षपणक' का वर्णन है उसका प्रमाण देते हुए श्वेताम्बराचार्य श्री विजयानन्द सूरीश्वर 'आत्माराम' जी (ई० सन् १९२० के लगभग) ने भी अपने ग्रन्थ 'तत्त्वनिर्णयप्रासाद' में प्रतिपादित किया है कि "जैनमत वेदसंहिता और वेदव्यास से पहले का सिद्ध होता है।"(पृष्ठ ५१४)।

किन्तु जिस 'नग्नक्षपणक' के उल्लेख के आधार पर यह सिद्ध होता है, उसे उन्होंने दिगम्बरजैन मुनि न मानकर श्वेताम्बर-जिनकल्पी मुनि माना है, क्योंकि वे भी नग्न रहते थे। श्री 'आत्माराम' जी लिखते हैं—

"इस लेख से भी यही सिद्ध होता है कि जैनमत वेदसंहिता से भी पूर्व विद्यमान था, क्योंकि 'नग्नक्षपणक' इस शब्द का यह अर्थ है क्षपणक नाम का साधु। साथ में 'नग्न' इस विशेषण से जैनमत का साधु सिद्ध होता है। जैनमत में दो प्रकार के साधु होते हैं: स्थविरकल्पी और जिनकल्पी। जिनकल्पी आठ प्रकार के होते हैं, जिनमें कई जिनकल्पी ऐसे होते हैं, जो रजोहरण, मुखवस्त्रिका के बिना अन्य कोई वस्त्र नहीं रखते हैं और प्रायः जंगल में ही रहते हैं। तथा टीकाकार नीलकण्ठ जी ने भी 'क्षपणक' पद का अर्थ पाषंडभिक्षु करा है।"(तत्त्वनिर्णय-प्रासाद / पृ.५१४)।

'आत्माराम' जी की इस मान्यता का कारण यह है कि वे आवश्यकनिर्युक्ति आदि के वर्णनानुसार दिगम्बरजैनमत की उत्पत्ति बोटिक शिवभूति के द्वारा वीर-निर्वाण संवत् ६०९ (ई० सन् ८२) में की गई मानते हैं। (त.नि.प्रा./पृ.५४२-५४३)। अतः इसके बहुत पहले रचे गये 'महाभारत' में जो 'नग्नक्षपणक' का उल्लेख मिलता है, उसे दिगम्बरजैन मुनि मानने से आवश्यकनिर्युक्ति का वचन मिथ्या सिद्ध होता है। इस धर्मसंकट के कारण उन्हें महाभारतोल्लिखित 'नग्नक्षपणक' को श्वेताम्बर-जिनकल्पी मुनि कहने के लिए बाध्य होना पड़ा। किन्तु उनकी यह मान्यता सर्वथा प्रमाणविरुद्ध है। पूर्व (शीर्षक ५) में ऐसे अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि दिगम्बर, श्वेताम्बर और वैदिकपरम्परा के साहित्य, संस्कृतसाहित्य एवं शब्दकोशों में 'नग्नक्षपणक' शब्द दिगम्बरजैन मुनि के लिए ही प्रयुक्त किया गया है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि स्वयं श्वेताम्बरग्रन्थों में क्षपणक को स्त्रीमुक्ति-विरोधी दिगम्बर-जैन मुनि कहा गया है,

यथा—"**क्षपणकाः स्त्रीमुक्तिनिषेधकं तीर्थकरं भणन्ति।**"[५९] इसके अतिरिक्त क्षपणक और श्वेताम्बर-जिनकल्पिक साधु के स्वरूपभेद से भी उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है। स्वरूप की भिन्नता का बोध निम्नलिखित तथ्यों से होता है—

१. वैदिकसाहित्य, संस्कृतसाहित्य तथा शब्दकोशों में क्षपणक को निर्वस्त्र एवं नग्न बतलाया गया है, जब कि श्वेताम्बर-जिनकल्पियों में वस्त्रलब्धियुक्त-जिनकल्पी लौकिक वस्त्र धारण न करते हुए भी नग्न नहीं दिखते थे, क्योंकि उनकी नग्नता लब्धिजन्य आवरण से ढँक जाती थी। तथा वस्त्रलब्धिरहित जिनकल्पियों के लिए नग्नता को छिपाने एवं शीतादि का निवारण करने हेतु एक, दो या तीन प्रावरण धारण करने की अनुमति दी गयी थी, क्योंकि श्वेताम्बरमत में नग्न दिखने को निर्लज्जता एवं असंयम का हेतु माना गया है।[६०]

२. संस्कृतसाहित्य में क्षपणक को मयूरपिच्छधारी कहा गया है—"**कैश्चित् क्षपणकैरिव मयूरपिच्छधारिभिः।**"[६१] जब कि श्वेताम्बर-जिनकल्पी मुनि वस्त्रनिर्मित रजोहरण धारण करते थे।

३. श्वेताम्बर जिनकल्पी साधु मुखवस्त्रिका भी पहनते थे,[६२] किन्तु वैदिकपरम्परा के ग्रन्थों एवं संस्कृतसाहित्य में कहीं भी क्षपणक को मुखवस्त्रिका धारण किये हुए नहीं बतलाया गया है, जब कि शिवमहापुराण में श्वेताम्बर (सवस्त्र) मुनि को तुण्डवस्त्रधारक (मुखवस्त्रिकाधारी) कहा गया है। (देखिये, अगला शीर्षक)।

४. वन्दना करने पर श्वेताम्बर साधु 'धर्मलाभ हो' यह आशीर्वाद देते हैं और दिगम्बर साधु 'धर्मवृद्धि हो' यह कहते हैं।[६३] पञ्चतन्त्र की पूर्वोक्त कथा में प्रधान क्षपणक को नमस्कार करने पर नाई 'धर्मवृद्धि' का आशीर्वाद प्राप्त करता है।

५. श्वेताम्बरीय ग्रन्थों में कहा गया है कि जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् (वीर निर्वाण के ६२ वर्ष बाद) जिनकल्प का विच्छेद हो गया। (विशे.भा./गा. २५९३)। अर्थात् पुरुषों में जिनकल्प धारण करने योग्य शक्तियों की उत्पत्ति बन्द हो गयी। अतः जिनकल्पी (लब्धिजन्य-देहावरणधारी या कटिवस्त्ररहित-वस्त्रपात्रधारी अथवा जिनलिंग-

---

५९. प्रवचनपरीक्षा-वृत्ति १/१/७१-७५/पृ. ५०।

६०. प्रवचनपरीक्षा-वृत्ति १/२/३१/पृ.९३-९४ तथा हेम.वृत्ति/विशे.भा./गा. २५८४,२५९१।

६१. कादम्बरी/पूर्वभाग/पृ.१०६।

६२. प्रवचनपरीक्षा/वृत्ति/१/२/३१/पृ.९४।

६३. "श्वेताम्बराणां रजोहरणमुखवस्त्रिकालोचादिलिङ्गं चोलपट्टकल्पादिको वेषः --- वन्द्यमाना धर्मलाभमाचक्षेत। --- दिगम्बराः वन्द्यमाना धर्मवृद्धिं भणन्ति।" षड्दर्शनसमुच्चय/त.र.दी. वृत्ति/अधिकार ४/पृ.१६०-१६१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in .

धारी) साधुओं की परम्परा का अन्त हो गया। केवल स्थविरकल्पी (कटिवस्त्रसहित-वस्त्रपात्रधारी) साधुओं की परम्परा शेष रही। फलस्वरूप 'महाभारत' की रचना के समय (५०० ई० पू० से १०० ई० पू०) श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में केवल कटिवस्त्रसहित-वस्त्रपात्रधारी साधुओं का ही अस्तित्व था। अतः यदि श्वेताम्बर जिनकल्पी साधुओं को 'विशेषावश्यकभाष्य' एवं 'प्रवचनपरीक्षा' के वचनों के विरुद्ध भी नग्न (पुरुषचिह्न को खुला रखनेवाला) मान लिया जाय और उक्त ग्रन्थों में क्षपणकों की जो स्त्रीमुक्ति-निषेधक विशेषता बतलायी गयी है तथा संस्कृतसाहित्य में उनके मयूरपिच्छीधारण करने तथा धर्मवृद्धि का आशीर्वाद देने के जो लक्षण बतलाये गये हैं, उन्हें भी अस्वीकार कर क्षपणक का मनमाना लक्षण बना लिया जाय, तो भी 'महाभारत' की रचना के समय श्वेताम्बर-जिनकल्पी साधुओं का अस्तित्व नहीं था, इसलिए उन्हें 'क्षपणक' शब्द से अभिहित किये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि 'महाभारत' में 'नग्नक्षपणक' नाम से दिगम्बरजैन मुनि का ही उल्लेख है।

२९

श्वेताम्बर साधु 'श्वेतपट' या 'सिताम्बर' नाम से प्रसिद्ध

शिवमहापुराण में श्वेताम्बर साधु

जैन-जैनेतरों में श्वेताम्बरसाधु 'श्वेतवस्त्र' या 'श्वेतपट' नाम से प्रसिद्ध थे, क्योंकि वे श्वेतवस्त्र धारण करते थे। सर्वप्रथम सम्राट् अशोक के समय में अथवा ई० पू० प्रथम शताब्दी में रचित माने जानेवाले बौद्धग्रन्थ **अपदान** में **सेतवत्थ** (श्वेतवस्त्र) नाम से 'श्वेतपट' साधुओं का उल्लेख मिलता है। इसका विस्तार से वर्णन इसी अध्याय के द्वितीय प्रकरण में द्रष्टव्य है। पाँचवीं शताब्दी ई० के कदम्बवंशीय राजा श्रीविजयशिव-मृगेशवर्मा के ताम्रपत्रलेख में निर्ग्रन्थश्रमणसंघ के प्रतिपक्षी के रूप में श्वेतपटश्रमण-संघ की चर्चा हुई है। सातवीं शती ई० के आदि में बाणभट्ट द्वारा रचित 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' में 'शिखिपिच्छ-लाञ्छन' एवं 'नग्नाटक' विशेषणों से क्षपणकों (दिगम्बरजैन मुनियों) का तथा 'श्वेतपट' नाम से श्वेताम्बर मुनियों का उल्लेख किया गया है। छठी शती ई० के दिगम्बराचार्य जोइन्दुदेव ने 'परमात्मप्रकाश' में 'क्षपणक' और 'श्वेतपट' (सेवडउ) इन दो सम्प्रदायों के मुनियों का नाम लिया है। 'विशेषावश्यकभाष्य' के वृत्तिकार मलधारी हेमचन्द्रसूरि ने २५८५वीं गाथा की वृत्ति में एक पुरानी गाथा उद्धृत की है, उसमें भी 'क्षपणक', 'बुद्ध' और 'श्वेतपट' (सेयवडो) इन तीन सम्प्रदायों के मुनियों का कथन किया गया है। इन सबके प्रमाण पूर्व में 'महाभारत' शीर्षक के अन्तर्गत दिये जा चुके हैं। ४७३ ई० के विमलसूरिकृत 'पउमचरिय' में 'सिताम्बर'

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

(सियंबर) शब्द से श्वेताम्बरों का अभिधान किया गया है। यथा—

पेच्छइ परिभमंतो दाहिणदेसे सियंबरं पणओ।
तस्स सगासे धम्मं सुणिऊण तओ समाढत्तो॥ २२/७८॥

अनुवाद—"राज्यच्युत राजा सौदास को दक्षिणदेश में भ्रमण करते हुए श्वेताम्बरमुनि के दर्शन होते हैं। उनसे वह धर्म का श्रवण कर श्रावकव्रत ग्रहण करता है।"

'हलायुधकोश' (अभिधानरत्नमाला) में जहाँ दिगम्बर-जैनमुनि को 'क्षपण', 'निर्ग्रन्थ' और 'मलधारी' कहा गया है, वहीं रजोहरण एवं श्वेतवस्त्र धारण करनेवाले मुनि का 'सिताम्बर' नाम बतलाया गया है—

रजोहरणधारी च श्वेतवासाः सिताम्बराः॥ २/१८९॥

नग्नाटो दिग्वासाः क्षपणः श्रमणश्च जीवको जैनाः।
आजीवो मलधारी निर्ग्रन्थः कथ्यते सद्भिः॥ २/१९०॥

वैदिकपरम्परा के **शिवमहापुराण** में जैनमतोत्पत्ति की कल्पित कथा प्रस्तुत करते हुए श्वेताम्बरमुनियों की चर्चा की गयी है, किन्तु वहाँ उन्हें **अरिहन्** कहा गया है,क्षपणक या निर्ग्रन्थ नाम प्रयुक्त नहीं किया गया। प्रमाण के लिए कथा का सम्बन्धित अंश नीचे दिया जा रहा है—

त्रिपुरवासी दैत्यों का वध करने के लिए उनके धर्म में विघ्न उपस्थित करना आवश्यक था। इस हेतु भगवान् विष्णु ने अपने शरीर से एक मायामय पुरुष की सृष्टि की। उसका सिर मुड़ा हुआ था, शरीर पर मैले वस्त्र थे, हाथ में गुम्फिपात्र (काष्ठनिर्मित पात्र) और पुंजिका (रजोहरण) विद्यमान थी तथा मुख वस्त्रखण्ड से आच्छादित था—

असृजच्च महातेजाः पुरुषं स्वात्मसम्भवम्।
एकं मायामयं तेषां धर्मविघ्नार्थमच्युतः॥

मुण्डितं म्लानवस्त्रं च गुम्फिपात्रसमन्वितम्।
दधानं पुञ्जिकां हस्ते चालयन्तं पदे पदे॥

वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं क्षीयमाणं मुखे सदा।
धर्मेति व्याहरन्तं हि वाचा विक्लवया मुनिम्॥[६४]

वह मुंडी विष्णु के समक्ष उपस्थित हुआ। विष्णु ने कहा—"तुम्हारा नाम 'अरिहन्'

६४. शिवमहापुराण / रुद्रसंहिता / युद्धखण्ड / अध्याय ४ / श्लोक १-३ / पृ. ४३२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

होगा। तुम मायाबल से सोलह हजार मायामय शास्त्रों की अपभ्रंशभाषा में रचना करो, जो श्रौत और स्मार्त आचार के विरुद्ध तथा वर्णाश्रम-व्यवस्था से रहित हों और कर्मसिद्धान्त-प्रधान हों—

अरिहन्नाम ते स्यात्तु ह्यन्यानि च शुभानि च।
स्थानं वक्ष्यामि ते पश्चाच्छृणु प्रस्तुतमादरात्॥

मायिन्मायामयं शास्त्रं तत्षोडशसहस्रकम्।
श्रौतस्मार्तविरुद्धं च वर्णाश्रमविवर्जितम्॥

अपभ्रंशमयं शास्त्रं कर्मवादमयं तथा।
रचयेति प्रयत्नेन तद्विस्तारो भविष्यति॥[६५]

उस मुण्डी ने अपने जैसे चार शिष्यों की रचना की तथा उन्हें मायामय शास्त्र पढ़ाये। वे चारों मुण्डी **पाषण्ड** (वेदविरुद्ध) धर्म के अनुयायी थे, हाथ में पात्र लिए हुए थे, वस्त्र से मुख आच्छादित किये हुए थे, शरीर पर मैले वस्त्र थे, और 'धर्मलाभ हो' ऐसा आशीर्वाद दे रहे थे। हाथ में वस्त्रखण्ड निर्मित मार्जनी (रजोहरण) विद्यमान थी तथा जीवहिंसा के भय से धीरे-धीरे चल रहे थे—

चत्वारो मुण्डिनस्तेऽथ धर्मं पाषण्डमाश्रिताः।
हस्ते पात्रं दधानाश्च तुण्डवस्त्रस्य धारकाः॥

मलिनान्येव वासांसि धारयन्तो ह्यभाषिणः।
धर्मो लाभः परं तत्त्वं वदन्तस्त्वतिहर्षतः॥

मार्जनीं धियमाणश्च वस्त्रखण्डविनिर्मिताम्।
शनैः शनैश्चलन्तो हि जीवहिंसाभयाद् ध्रुवम्॥ [६६]

यहाँ विष्णु के द्वारा रचे गये मायामय पुरुष को मैलेवस्त्र, काष्ठनिर्मितपात्र, रजोहरण एवं मुखवस्त्रिका धारण किये हुए तथा धर्मलाभ का आशीर्वाद देते हुए दिखलाया गया है। ये श्वेताम्बरमुनि के लक्षण हैं। शिवमहापुराण के कर्त्ता ने इन लक्षणोंवाले उक्त पुरुष को 'अरिहन्' नाम से सम्बोधित किया है, किन्तु 'क्षपणक' या 'निर्ग्रन्थ' नाम प्रयुक्त नहीं किया। इन उदाहरणों से सिद्ध है कि जैन-जैनेतर सम्प्रदायों में श्वेताम्बर मुनि 'श्वेतवस्त्र', 'श्वेतपट' और 'सिताम्बर' नामों से ही प्रसिद्ध थे, 'क्षपणक' या 'निर्ग्रन्थ' नाम से नहीं।

---

६५. वही/श्लोक ९-११/पृ. ४३२।
६६. वही/श्लोक २८-३०/पृ. ४३३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३०

'क्षपणक' शब्द यापनीयसाधु का भी वाचक नहीं

जैसा कि पूर्व (अध्याय २/प्र.२/शी.३) में कहा गया है, मुनि श्री कल्याणविजय जी ने 'क्षपणक' (खमण) का अर्थ यापनीय साधु माना है। ('क्षपणक' का प्राकृतरूप 'खमण' है। देखिये, अ.४/प्र.१/शी.५/प्र.परी./गा.७१)। अब यहाँ इतिहासकार श्वेताम्बर मुनियों की स्वच्छन्द कपोलकल्पनाओं का मनोरंजक दृश्य उपस्थित होता है। एक मुनिश्री कहते हैं कि 'क्षपणक' शब्द का अर्थ श्वेताम्बर-जिनकल्पी मुनि है, दूसरे कहते हैं कि वह यापनीयसाधु का पर्यायवाची है। इससे सिद्ध है कि दोनों मान्य मुनियों ने प्रमाणों के आधार पर नहीं, अपितु मन:कल्पनाओं के आधार पर कल्पित इतिहास रचने की चेष्टा की है। यदि बात प्रमाणों के आधार पर की जाती, तो दोनों मुनियों का एक ही निष्कर्ष होता, परस्पर विरुद्ध नहीं।

सत्य यह है कि 'क्षपणक' शब्द यापनीयसाधु का भी वाचक नहीं है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

१. समस्त प्राचीन श्वेताम्बरग्रन्थों में एक स्वर से स्त्रीमुक्तिविरोधी दिगम्बरजैन मुनियों को ही 'बोटिक' और 'क्षपणक' कहा गया है, इसलिए मुनि कल्याणविजय जी का यह कथन सर्वथा मन:कल्पित है कि दक्षिण भारत में जाने पर बोटिक अर्थात् दिगम्बरजैन 'यापनीय' और 'क्षपणक' (खमण) नाम से प्रसिद्ध हुए। (श्र.भ.म./पृ.३०१)। 'क्षपणक' नाम से तो वे पहले से ही प्रसिद्ध थे। 'यापनीय' नाम से प्रसिद्ध हुए, इसका कोई साहित्यिक या शिलालेखीय प्रमाण नहीं है। दक्षिणभारत में यापनीयसम्प्रदाय की नवीन उत्पत्ति हुई थी, वह भी श्वेताम्बरसम्प्रदाय से ही। इसका सप्रमाण प्रतिपादन 'यापनीयसंघ का इतिहास' नामक अध्याय में द्रष्टव्य है।

२. भारतीय साहित्य में 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग यापनीयों की उत्पत्ति के बहुत पहले से मिलता है। महाभारत की रचना ई. पू. ४०० से ई. पू. १०० के बीच हुई है। उसमें नग्नक्षपणक का उल्लेख है, जबकि 'यापनीय' शब्द का उल्लेख पाँचवीं शताब्दी ई० के पूर्व भारतीय साहित्य के किसी भी ग्रन्थ या शिलालेख में नहीं मिलता। सर्वप्रथम उल्लेख सन् ४७०-४९० के बीच लिखे गये दक्षिणभारत के कदम्बवंशीय राजा मृगेशवर्मा के हल्सी-दानपत्र (लेख क्र. ९९) में हुआ है। उसमें लिखा है कि उक्त राजा ने यापनीयों, निर्ग्रन्थों और कूर्चकों को भूमिदान किया था।[६७] इस उल्लेख के आधार पर यदि यापनीयसंघ को दान दिये जाने योग्य लोकमान्यता और राजमान्यता

६७. "श्रीविजयपलाशिकायां यापनीयनिर्ग्रन्थकूर्च्चकानां --- दत्तवान्।" जै.शि.सं./मा.च/भा.२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन: 0731-2571851 मो.: 8989505108 e-mail: sanskarsagar@yahoo.co.in

पाने के लिए ७० वर्ष का समय भी आवश्यक माना जाय तो उसका उत्पत्तिकाल ४०० ई० से पूर्व सिद्ध नहीं होता। डॉ० सागरमल जी ने भी पाँचवी शताब्दी ई० में ही उसकी उत्पत्ति मानी है। इससे सिद्ध है कि मुनि जी का यह कथन सर्वथा कपोलकल्पित है कि बोटिकों के लिए 'यापनीय' और 'क्षपणक' शब्दों का प्रयोग दक्षिण भारत में जाने पर हुआ था। चूँकि भारतीय साहित्य में 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग यापनीयों की उत्पत्ति के बहुत पहले से होता आ रहा था, अतः सिद्ध है कि 'क्षपणक' शब्द यापनीयसाधु का पर्यायवाची नहीं है, अपितु दिगम्बर जैनमुनियों का ही नामान्तर है। इसलिए पाँचवी शती ई० के बहुत पूर्व रचे गये 'महाभारत', 'चाणक्यशतक', 'पंचतंत्र' आदि ग्रन्थों में जो क्षपणकों की चर्चा है, वह यापनीय साधुओं की नहीं, अपितु दिगम्बरजैन साधुओं की ही है।

३. श्वेताम्बर मुनियों के समान यापनीय मुनि भी वन्दना किये जाने पर 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद देते थे, दिगम्बरों के समान 'धर्मवृद्धि' का नहीं। 'षड्दर्शनसमुच्चय' के टीकाकार गुणरत्नसूरि ने कहा है—"**गोप्यास्तु वन्द्यमाना धर्मलाभं भणन्ति। गोप्या यापनीया इत्यऽप्युच्यन्ते।**" (पृष्ठ १६१)। किन्तु 'पंचतंत्र' की पूर्वोक्त कथा में प्रधान क्षपणक नापित को 'धर्मवृद्धि' का आशीर्वाद देते हैं। यह क्षपणक के दिगम्बर जैनमुनि होने का अकाट्य प्रमाण है।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि 'क्षपणक' यापनीय साधु का नामान्तर नहीं है, अपितु दिगम्बरजैन साधु का पर्यायवाची है। अतः 'महाभारत' आदि वैदिकपरम्परा के ग्रन्थों में 'क्षपणक' शब्द से दिगम्बरजैन साधुओं का ही वर्णन किया गया है।

३१
दिगम्बरजैन मुनि और आजीविक साधु में भेद

यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'महाभारत' आदि वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग आजीविक साधुओं के लिए किया गया है। इस प्रकार के कथन की संभावना और अयुक्तिमत्ता को समझने के लिए श्वेताम्बरमुनि श्री कल्याणविजय जी के निम्नलिखित वक्तव्य का अनुशीलन करना आवश्यक है। वे लिखते हैं—

"नन्दीसूत्र के उल्लेखानुसार पूर्वश्रुत में आजीविक और त्रैराशिक मतानुसारी सूत्रपरिपाटी का वर्णन होने से डॉ० हार्नले का कथन है कि जिन आजीविक और त्रैराशिकों का नन्दी में उल्लेख है, वे गोशालक से बदल कर महावीर के पास गये हुए आजीविक थे। ये दोनों सम्प्रदाय निर्ग्रन्थसम्प्रदाय से पृथक् नहीं थे। उनका यह भी कथन है कि वर्तमान दिगम्बरजैन-संघ उन्हीं आजीविक और त्रैराशिकों का उत्तराधिकारी है। इसके प्रतिपादन में वे कहते हैं—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१.''महावीर के साथ गोशालक का झगड़ा हुआ, उस समय जो आजीविक भिक्षु महावीर से जा मिले थे, उन्होंने अपना नाग्न्याचार कायम रक्खा था।

२.''आजीविक और त्रैराशिकों के मत का पूर्वश्रुत में वर्णन होने से ये निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के वर्तुल के बाहर के नहीं हो सकते।

३.''आजीविक नग्न होते थे और दिगम्बर भी नग्न होते हैं।

४.''आजीविक एक दण्ड रखते थे और दिगम्बर भी रखते हैं।

५.''तामिल भाषा में 'आजीविक' शब्द का अर्थ दिगम्बर होता है।

६.''शीलाङ्काचार्य के लेख से आजीविक और दिगम्बर एक साबित होते हैं।

७.''दसवीं सदी के कोषकार हलायुध ने दिगम्बरों को आजीविक लिखा है।''

(श्र.भ.म./पृ.२७५-२७६)।

डॉ० हार्नले के इन तर्कों की मीमांसा करते हुए मुनि जी लिखते हैं—

१.''डॉ० महोदय के 'महावीर से जा मिलने वाले आजीविक भिक्षु निर्ग्रन्थसंघ में मिलने के बाद भी नग्न ही रहे थे' इस कथन में कुछ भी प्रमाण नहीं है।

२.''पूर्वश्रुत में उल्लेख होने से ही आजीविक और त्रैराशिकों को निर्ग्रन्थसंघ के वर्तुल के भीतर मान लेना भी युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि पूर्वश्रुत दृष्टिवाद का एक भाग होने से उसमें अन्य दार्शनिकों के मत का उल्लेख होना कोई नयी बात नहीं है। दृष्टिवाद में प्रत्येक दर्शन की आलोचना-प्रत्यालोचना होना स्वाभाविक है। आजीविक और त्रैराशिकों के सिद्धान्त अधिकांश में जैनसिद्धान्तों से मिलते जुलते थे, इस वास्ते सूत्र-विभाग में इनके मतानुसारी सूत्रों का होना कुछ अस्वाभाविक या आश्चर्यजनक नहीं है। और इस कारण से ही इनको निर्ग्रन्थसंघ में मान लेना ठीक नहीं।

३.''आजीविक और दिगम्बर दोनों नग्न होने से भी एक नहीं हो सकते। आजीविकों की ही तरह पूरणकश्यप और उसके अनुयायी भी नग्न रहते थे, तो क्या नग्नता के नाते इनको भी उन दोनों से अभिन्न मान लिया जायगा? कभी नहीं। वर्तमान समय में निरंजनी आदि अनेक वैष्णव साधुओं की जमातें नग्न रहती हैं, फिर भी यह कभी नहीं कह सकते कि दिगम्बरजैन साधु इनसे अभिन्न हैं।

४.''दिगम्बर जैनों के एक दण्ड रखने के विधान की बात भी हम सत्य नहीं मान सकते। जहाँ तक हमें ज्ञात है दिगम्बरजैन साधु किसी भी तरह का दण्ड नहीं रखते और न ऐसा करने का उनके शास्त्रों में विधान ही है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

५."तामिल भाषा में आजीविक शब्द का अर्थ 'दिगम्बर' करने से भी आजीविक और दिगम्बरजैन एक नहीं हो सकते, क्योंकि उस प्रदेश में आजीविकों का अधिक प्रचार था और वे निरन्तर नग्न ही रहते थे, इस कारण वे वहाँ दिगम्बर भी कहलाते होंगे। परन्तु इस शब्दार्थ मात्र से दिगम्बरजैन और आजीविक अभिन्न सिद्ध नहीं हो सकते। नग्न रहने से हर कोई दिगम्बर कहा जा सकता है, पर इससे वह दिगम्बरजैन ही है यह मान लेना युक्तिसंगत नहीं।

६."शीलांकाचार्य ने 'आजीविक' का पर्याय 'दिगम्बर' किया तो इससे भी उनकी नग्नता मात्र प्रकट होती है, न कि दिगम्बरजैनों से अभिन्नता।

७."हलायुध ने अभिधानरत्नमाला में दिगम्बरजैनों को आजीविक कह दिया, इससे भी वे अभिन्न सिद्ध नहीं किये जा सकते। कोषकार कुछ प्रामाणिक इतिहासकार नहीं होते कि वे जो कुछ लिखें प्रमाणसिद्ध ही लिखें। अपने समय में जिस शब्द का जो अर्थ किया जाता हो, उसे उस अर्थ में लिख देना, इतना ही कोषकारों का कर्त्तव्य होता है। हलायुध के समय में दिगम्बरजैनों को जैनेतर लोग आजीविक नाम से भी पहचानते होंगे, इस कारण कोषकार ने उन्हें आजीविक भी लिख दिया, पर इतने ही से वे आजीविक नहीं हो सकते।

"ऊपर हमने देखा कि डॉ० हार्नले के दिये हुए प्रमाणों में एक भी प्रमाण ऐसा नहीं, जो दिगम्बरजैनों को ही आजीविक अथवा त्रैराशिक सिद्ध कर सके। इसके अतिरिक्त दिगम्बरों को त्रैराशिक मानने में किसी प्रकार की दार्शनिकमान्यता-विषयक सादृश्य भी नहीं है। यदि दिगम्बरजैन ही त्रैराशिक होते, तो इनमें भी सत्, असत्, सदसत्, नित्य, अनित्य, नित्यानित्य इत्यादि त्रैराशिक-सम्मत तीन राशि की और तीन नय की मान्यता होती, पर ऐसा कुछ भी नहीं है। (श्र.भ.म./पृ.२७६-२७८)।

"श्वेताम्बर-जैनसंघ के अनेक नये-पुराने ग्रन्थों में दिगम्बर-सम्प्रदाय का उल्लेख और वर्णन है, पर कहीं भी इनको श्वेताम्बरों ने 'आजीविक' अथवा 'त्रैराशिक' नहीं कहा। भाष्यों और चूर्णियों में सर्वत्र इनको 'बोडिय' (बोटिक) इस नाम से व्यवहृत किया है। दसवीं सदी के बाद के ग्रन्थों में आशाम्बर, दिगम्बर, दिक्पट इत्यादि नामों का इनके लिये प्रयोग हुआ है। कहीं भी आजीविक अथवा त्रैराशिक ये शब्द दिगम्बरजैनों के लिए प्रयुक्त नहीं हुए। यदि वे एक होते, तो सबसे पहले श्वेताम्बरजैन ही उनको गोशालक-शिष्य कहकर तिरस्कृत करते, क्योंकि उनके सबसे अधिक निकटवर्ती वे ही थे। पर वैसा कहीं भी उल्लेख नहीं किया। इसके विपरीत श्वेताम्बर ग्रन्थकारों ने दिगम्बर और आजीविकों का भिन्न-भिन्न उल्लेख किया है। उदाहरण के तौर पर हम यहाँ ओघनिर्युक्ति-भाष्य की एक गाथा का अवतरण देंगे, जिसमें आजीविक और दिगम्बरों का अलग-अलग उल्लेख है।

"साधु वर्षा-चातुर्मास्य के लिए ग्राम में प्रवेश करें, उस समय होने वाले अपशकुनों का वर्णन करते हुए उक्त भाष्यकार कहते हैं—

चक्कयरंमि भमाडो, भुक्खामारो य पंडुरंगंमि।
तच्चन्निअ रुहिरपनं, बोडियमसिए धुवं मरणं॥ १०७॥

"अर्थात् (ग्राम में प्रवेशक करते समय) चक्रधर भिक्षु सामने मिले, तो चातुर्मास्य में भटकना पड़े, पांडुरंग आजीविक भिक्षु सामने मिले, तो भूख और मार सहन करनी पड़े बौद्ध भिक्षु के सामने मिलने पर खून गिरे और बोटिक (दिगम्बरजैन) तथा असित-भौत नामक भिक्षुओं के सामने मिलने पर निश्चित मरण हो।

"उपर्युक्त गाथा में आजीविकों के लिए **पांडुरंग** और दिगम्बरों के लिए **बोडिय** नाम प्रयुक्त हुए हैं। यदि वे दोनों एक ही होते तो उनका भिन्न-भिन्न नामों से उल्लेख करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं रहती।

"इन सब बातों का विचार करने पर यह बात निश्चित हो जाती है कि दिगम्बरजैन मूल निर्ग्रन्थसंघ का ही एक विभाग है। आजीविक या त्रैराशिकों से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। (श्र.भ.म./ पृ.२७८-२७९)।

३२
आजीविकों का इतिहास

प्रसंगवश आजीविकों के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए मुनि श्री कल्याणविजय जी लिखते हैं—

"अब हम आजीविकों के इतिहास पर दृष्टिपात करेंगे। बौद्ध **महावंश** में लंका के राजा 'पांडुकाभय' के आजीविकों के लिये एक मकान बनवाने का उल्लेख है। यदि महावंशकार का यह कथन ठीक हो तो ई० स० पूर्व पाँचवी सदी के अंतिम चरण तक आजीविक लंका तक पहुँच गये थे, यही कहना चाहिये।

"उपलब्ध साधनों में आजीविकों के सम्बन्ध में सबसे प्राचीन उल्लेख तो गया के पास बर्बर पहाड़ की एक गुफा की दीवार पर खुदे हुए अशोक के एक लेख में है। इसमें लिखे मुजब यह लेख महाराजा अशोक के राज्य में तेरहवें वर्ष में खोदा गया था। इस लेख का भाव यह है—"राजा प्रियदर्शी ने अपने राज्य के तेरहवें वर्ष में यह गुफा आजीविकों को अर्पण की।"

"दूसरा उल्लेख इसी महाराज अशोक के शासनस्तंभों में के सातवें स्तम्भ पर राज्य के २८वें वर्ष में खुदे हुए लेख में आता है, जो इस प्रकार है—"मैंने योजना

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

की है कि मेरे धर्म-महामात्र बौद्ध संघ के, ब्राह्मणों के, आजीविकों के, निर्ग्रन्थों के और वास्तविक भिन्नतावाले कुछ पाषण्डों के कार्य में व्याप्त हो जायँगे।

''तीसरा प्राचीन उल्लेख नागार्जुन की गुफा की दीवारों पर खुदे हुए अशोक के पुत्र दशरथ के लेख में आता है, जो इस प्रकार है—'यह गुफा महाराज दशरथ ने राजगद्दी पर आने के बाद तुरन्त आचन्द्रार्क निवास के लिए सम्मान्य आजीविकों को अर्पण की।'

''पहले जो आजीविकों के पास कालकाचार्य के निमित्तशास्त्र पढ़ने की बात कही गई है, उससे सिद्ध है कि विक्रम-पूर्व प्रथम शताब्दी में दक्षिण भारत में आजीविकों का खासा प्रचार था। आजीविकों का एक विचित्र वृत्तान्त सदजीरो सुगुइर (Sadajiro Suguira) '**हिन्दू लोजिक ऐज प्रीजर्व इन चाइना एण्ड जापान**' नामक छोटे ग्रन्थ में आता है।

''उपोद्घात के पृष्ठ सोलह पर ग्रन्थकार कहता है—'चीनी और जापानी ग्रन्थकर्त्ता बार-बार इन महासम्प्रदायों में (अर्थात् सुप्रसिद्ध छः भारतीय सम्प्रदायों में) दो विशेष सम्प्रदायों का समावेश करते हैं जो 'निकेन्दब्री' और 'अशिविक' के नाम से पहिचाने जाते हैं और एक दूसरे से बिलकुल मिलते-जुलते हैं। ये दोनों मानते हैं कि पापी जीवन का दण्ड जल्दी या देरी से चुकाना ही पड़ता है और इससे बचना अशक्य होने से जैसे भी हो यह जल्दी ही चुकाना अच्छा है, जिससे कि भावी जीवन आनन्द में निर्गमन हो सके। इस प्रकार इनके विचार तापसिक थे। उपवास, मौन, अचलासन और आकंठ अपने को दबाये रखना ये इनकी तपस्या के बोधक थे। सम्भवतः ये सम्प्रदाय जैन अथवा किसी अन्य हिन्दू सम्प्रदाय की प्रशाखायें थीं।'

''उक्त लेख में उल्लिखित 'निकेन्दब्री' और 'अशिविक' क्रमशः **निर्ग्रन्थव्रती और आजीविक** हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

''बृहज्जातक के प्रव्रज्यायोग-प्रकरण में वराहमिहिर ने जो सात भिक्षुवर्ग बताये हैं, उनमें आजीविक भी शामिल हैं।

''विक्रम की सातवीं सदी की कृति निशीथचूर्णि में 'आजीविक' शब्द का परिचय देते हुए चूर्णिकार जिनदासगणि महत्तर लिखते हैं—'आजीवक गोशालक-शिष्य होते हैं, जो पंडरभिक्षुक भी कहलाते हैं।' ओघनिर्युक्ति-भाष्यकार भी आजीविकों का पांडुरंग नाम से व्यवहार करते हैं, जैसा कि पहले बताया जा चुका है।

''अनुयोगद्वार चूर्णि में 'पंडरंग' शब्द का पर्याय बताते हुए चूर्णिकार कहते हैं—''पंडरंगा सा (सस) रक्खा'' अर्थात् 'पंडरंग' का अर्थ 'सरजस्क' भिक्षु है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

''दसवीं सदी के प्रसिद्ध जैन टीकाकार आचार्य शीलांक ने एकदण्डियों को शिवभक्त बताया है।'' (श्र.भ.म./पृ.२७९-२८०)।

''ग्यारहवीं शताब्दी के टीकाकार भट्टोत्पल ने बृहज्जातक की टीका में 'आजीविकों' का अर्थ 'एकदण्डी' किया है और उन्हें 'नारायण' का भक्त लिखा है।

''उपर्युक्त प्रमाणों और नामोल्लेखों से जो निष्कर्ष निकलता है, उसका सार यह है कि बृहज्जातक के उल्लेख से पाया जाता है कि वराहमिहिर के समय अर्थात् विक्रम की छठी शताब्दी के उत्तरार्ध तक आजीविक विद्यमान थे और वे 'आजीविक' नाम से ही पहचाने जाते थे।

''निशीथचूर्णि और ओघनिर्युक्ति के भाष्यकार के समय विक्रम की सातवीं शताब्दी में आजीविक 'गोशालकशिष्य' के नाम से प्रसिद्ध होने पर भी 'पाण्डुरभिक्षु' अथवा 'पाण्डुरंगभिक्षु' कहलाने लगे थे।

''अनुयोगद्वारचूर्णि में 'पंडुरंग' शब्द का पर्याय 'सरजस्क' लिखा है। इससे हमें उनका 'पाण्डुरंग' यह नाम प्रचलित होने का कारण भी समझ में आ जाता है। आजीविक भिक्षु नग्न रहते थे, इस कारण संभव है कि शीतनिवारणार्थ शैव संन्यासियों की तरह इन्होंने भी अपने शरीर पर भस्म या किसी तरह की सफेद धूल (रजस्) लगाना शुरू कर दिया हो और इससे वे पांडुरंग (भूरे रंगवाले) या 'पांडुराङ्ग' (धूसर शरीरवाले) कहलाने लगे हों। कुछ भी हो, पर यह तो निश्चित है कि इन नामों के साथ ही आजीविक नये धर्म-सम्प्रदायों के निकट पहुँच चुके थे और इसका परिणाम वही हुआ जो होना चाहिये था। विक्रम की आठवीं सदी में पहुँच कर आजीविक अपना अस्तित्व खो बैठे। वे हमेशा के लिए शैव और वैष्णव सम्प्रदायों में मिलकर उन्हीं नामों से प्रसिद्ध हो गये। आचार्य शीलाङ्क इनको शैव और भट्टोत्पल नारायणभक्त बताते हैं, उसका यही कारण है।

''दक्षिण भारत में तथा अन्यत्र आज तक निरंजनी आदि नग्न संन्यासियों की जमातें जो दृष्टिगोचर होती हैं, हमारे ख्याल से ये उसी नामशेष आजीविक संप्रदाय के अवशेष हैं।

''अब हम एक शंका का निराकरण कर के इस लेख को पूरा करेंगे।

''विक्रम की आठवीं शताब्दी में ही आजीविक सम्प्रदाय नामशेष हो गया था' हमारे इस कथन पर प्रश्न हो सकता है कि यदि आठवीं शताब्दी में ही आजीविकों की समाप्ति हो गई होती, तो विक्रम की तेरहवीं सदी के चौथे और चौदहवीं सदी के पहले चरण में चोलराजा 'राज' के द्वारा पेरुमाल के मन्दिर की दीवारों पर खुदवाये

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

गये संवत् १२९५-१२९६, १३०० और १३१६ के शिलालेखों मे आजीविकों पर कर लगाने का उल्लेख कैसे होता?

"उत्तर यह है कि उक्त लेखों में आजीविकों पर कर लगाने का जो उल्लेख है, वह गोशालकशिष्य आजीविकों के लिये नहीं, किन्तु आजीविकों के सादृश्य से पिछले समय में 'आजीविक' नामप्राप्त 'दिगम्बर' जैनों के लिये है।

"दक्षिण भारत आजीविक और दिगम्बरजैन दोनों ही का मुख्य विहारक्षेत्र था। यही नहीं, दोनों ही सम्प्रदायवाले दिगम्बर और अवैदिक भिक्षु थे। इस कारण सर्वसाधारण में उन दोनों का भेद समझना सहज नहीं था। लोग आजीविकों को दिगम्बर समझ लेते थे और दिगम्बरों को आजीविक भी। परन्तु जब से खरे आजीविक आजीविक मिटकर पंडुरंगादि नामों से प्रसिद्ध हो वैष्णवादि सम्प्रदायों में मिल गये, तब से आजीविक नाम केवल दिगम्बरजैनों के लिये ही रह गया। धनञ्जय दिगम्बरजैनों के आजीविक नाम से प्रसिद्ध होने की जो बात कहता है, उसका कारण भी इससे समझ में आ जाता है, क्योंकि उस समय से बहुत पहले ही वास्तविक आजीविकों का अस्तित्व मिट चुका था और नग्न भिक्षुओं के लिये सुप्रसिद्ध 'आजीविक' नाम का प्रयोग नग्न भिक्षुओं के नाते दिगम्बरजैन साधुओं के लिये रूढ़ हो गया था। राजा 'राज' के लेखों में दिगम्बरजैनों के लिये जो 'आजीविक' शब्द प्रयुक्त हुआ है, उसका यही कारण है।" (श्र.भ.म./पृ.२८०-२८२)।

मुनि जी के कथन का सार यह है कि डॉ० हार्नले, कोषकार हलायुध तथा चोलराजा के राज्य की जनता ने नग्नता की समानता के कारण दिगम्बरसाधुओं को आजीविकसाधु मान लिया, जो गलत था। वे सर्वथा भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के साधु थे। मुनि जी ने आजीविक साधुओं के लक्षण इस प्रकार बतलाये हैं—

१. वे मक्खलिपुत्र गोशालक के अनुयायी थे।

२. नग्न रहते थे, एक दण्ड रखते थे और शरीर पर भस्म लगाते थे।

३. पाणिपात्र में भोजन लेकर ग्रहण करते थे एवं केशलोच भी करते थे, किन्तु मयूरपिच्छी नहीं रखते थे।[६८]

४. शिवभक्त एवं नारायणभक्त थे।

५. साहित्य और शिलालेखों में दिगम्बरों और आजीविकों का अलग-अलग उल्लेख हुआ है।

---

६८. श्रमण भगवान् महावीर / पृ. २५९-२७५ तथा पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री : जैन साहित्य का इतिहास / पूर्वपीठिका / पृ. ४६३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३३

आजीविक साधु की भी 'क्षपणक' संज्ञा संभव नहीं

चूँकि 'आजीविक' बहुत प्राचीन सम्प्रदाय था और इस सम्प्रदाय के साधु भी नग्न रहते थे, इसलिए डॉ० हार्नले के समान कोई आधुनिक विद्वान् यह भी कह सकता है कि 'महाभारत' आदि में 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग आजीविक साधुओं के लिए किया गया है। किन्तु यह कथन सर्वथा असंगत होगा। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

१. 'क्षपणक' शब्द नग्न मुनिमात्र का वाचक नहीं है, बल्कि सम्प्रदायविशेष के अर्थात् दिगम्बरजैन सम्प्रदाय के नग्न मुनि का वाचक है। श्वेताम्बरग्रन्थों में आजीविक साधुओं को 'आजीविक' और 'पाण्डुरंग' (भस्मलिप्त श्वेतांगवाला) शब्दों से उल्लिखित किया गया है, 'बोटिक' या 'क्षपणक' शब्द से नहीं। संस्कृतसाहित्य में 'क्षपणक' को 'जिन' या 'अरहन्त' का अनुयायी, मयूरपिच्छीधारी, 'धर्मवृद्धि' का आशीर्वाद देनेवाला आदि विशेषणों के साथ वर्णित किया गया है, जो दिगम्बरजैन साधु के विशिष्ट लक्षण हैं। अतः 'क्षपणक' शब्द दिगम्बरजैन मुनि के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

हाँ, 'आजीविक' शब्द का प्रयोग अवश्य, नाग्न्य-सादृश्य के कारण भ्रमवश चोलराजा (१३-१४वीं शताब्दी ई०) के शिलालेखों में दिगम्बरजैन साधुओं के लिए किया गया है, किन्तु आजीविकों के लिए क्षपणक, बोटिक या निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ है। यदि एक भी ग्रन्थ या अभिलेख में 'पाण्डुरंग' (भस्मलिप्त श्वेतशरीर) तथा 'एकदण्डधारी' विशेषणों के साथ किसी नग्न साधु के लिए 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग मिल जाय, तो माना जा सकता है कि 'क्षपणक' शब्द नग्नमुनिमात्र का वाचक है और उससे 'आजीविक' साधु का भी बोध होता है। इसी प्रकार एक भी ग्रन्थ में 'रजोहरण' और 'मुखवस्त्रिका' के चिह्नों के साथ 'क्षपणक' शब्द का व्यवहार उपलब्ध होने पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि 'क्षपणक' शब्द श्वेताम्बर-जिनकल्पी मुनि का भी बोधक है। तथैव एक भी ग्रन्थ में 'धर्मलाभ' के आशीर्वचन सहित किसी नग्न मुनि के लिये 'क्षपणक' शब्द प्रयुक्त हुआ दिखाई दे, तो यह मानने में संकोच नहीं हो सकता कि यापनीयसाधु भी क्षपणक कहलाते थे। किन्तु किसी भी ग्रन्थ या शिलालेख में उपर्युक्त लक्षणों के साथ 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग उपलब्ध नहीं होता। सर्वत्र 'नग्न', 'आर्हत', 'जिनानुयायी' 'मयूरपिच्छधारी' एवं 'धर्मवृद्धि का आशीर्वाद देनेवाला' इन विशेषणों में से ही किसी विशेषण के साथ 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग मिलता है। अतः यह निर्विवादरूप से सिद्ध होता है कि 'क्षपणक' शब्द से सर्वत्र दिगम्बरजैन मुनि का ही वर्णन किया गया है, 'आजीविक' आदि का नहीं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३४

'निर्ग्रन्थ' शब्द केवल दिगम्बर जैन साधुओं के लिए प्रसिद्ध

'क्षपणक' शब्द के समान 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग भी दिगम्बरजैन-साहित्य वैदिकसाहित्य, बौद्धसाहित्य, संस्कृतसाहित्य, शब्दकोशों और अभिलेखों में केवल दिगम्बरजैन मुनियों के लिए हुआ है। इसका सप्रमाण प्रतिपादन द्वितीय अध्याय के षष्ठ प्रकरण में किया गया है तथा प्रस्तुत अध्याय में भी इसके प्रमाण विस्तारपूर्वक द्रष्टव्य हैं।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in .

द्वितीय प्रकरण

बौद्धसाहित्य में दिगम्बरजैन मुनि

१

प्राचीन बौद्धसाहित्य में दिगम्बरजैन मुनियों का उल्लेख

श्वेताम्बरमुनि श्री कल्याणविजय जी ने लिखा है कि "बौद्धों के प्राचीन शास्त्रों में नग्न जैन साधुओं का कहीं उल्लेख नहीं है और **विसाखावत्थु**, **धम्मपद-अट्ठकथा**, **दिव्यावदान** आदि में जहाँ नग्न निर्ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, वे ग्रन्थ उस समय के हैं, जब कि यापनीयसंघ और आधुनिक सम्प्रदाय तक प्रकट हो चुके थे। **डायोलोग्स ऑव् बुद्ध** नामक पुस्तक के ऊपर से बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित कुछ आचार **भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध** नामक पुस्तक (पृष्ठ ६१-६५) में दिये गये हैं, जिनमें 'नग्न' रहने और हाथ में खाने का भी उल्लेख है। पुस्तक के लेखक बाबू कामताप्रसाद की दृष्टि में ये आचार प्राचीन जैन साधुओं के है, परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। **मज्झिमनिकाय** में साफ-साफ लिखा गया है कि ये आचार आजीविक संघ के नायक गोशालक तथा उनके मित्र नन्दवच्छ और किस्ससंकिच्च के हैं, जिनका बुद्ध के समक्ष **निग्गंथश्रमण सच्चक** ने वर्णन किया था।"[६९]

यद्यपि मुनि जी का यह कथन सत्य है कि बाबू कामताप्रसाद जी ने उपर्युक्त पुस्तक में जिन आचारों को जैन साधुओं का आचार बतलाया है, वे वस्तुतः आजीविक साधुओं के आचार हैं,[७०] तथापि यह कथन सत्य नहीं है कि प्राचीन बौद्ध शास्त्रों में नग्न जैन साधुओं का कहीं उल्लेख नहीं है। सर्वप्रथम तो प्राचीन बौद्धसाहित्य में अनेकत्र **निगण्ठनातपुत्त** या **निगण्ठनाटपुत्त** (निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र) के नाम से भगवान् महावीर की तथा **निगण्ठ** शब्द से उनके अनुयायी साधुओं की चर्चा की गई है और 'निर्ग्रन्थ' शब्द 'नग्न' या 'अचेलक' के अर्थ में शास्त्रप्रसिद्ध और लोकप्रसिद्ध है, यह द्वितीय अध्याय के षष्ठ प्रकरण में सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त **अंगुत्तरनिकाय** नामक प्राचीन (ईसापूर्ववर्ती) बौद्धग्रन्थ में निर्ग्रन्थों को **अहिरिका** (अह्रीक = निर्लज्ज) कहकर उनके नग्न रहने का द्योतन किया गया है। इस प्रकार बौद्धों के प्राचीन साहित्य में सर्वत्र नग्न जैन मुनियों का ही उल्लेख है, श्वेताम्बर जैन मुनियों

---

६९. श्रमण भगवान् महावीर / पृ. ३३०-३३१।

७०. "सेय्यथीदं-नन्दो वच्छो, किसो सङ्किच्चो, मक्खलि गोसालो—एते हि, भो गोतम! अचेलका, मुत्ताचारा, हत्थापलेखना ---।" महासच्चकसुत्तं / मज्झिमनिकाय / १. मूलपण्णासक / पृ. २९२/ बिहार राजकीय पालि प्रकाशन मण्डल।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

की चर्चा तो एक ही स्थान पर है। आगे बौद्धसाहित्य के उन प्रसंगों को उपस्थित किया जा रहा है, जिनमें निर्ग्रन्थों और उनके नग्नत्व की चर्चा की गई है।

१.१. अंगुत्तरनिकाय में निर्ग्रन्थों की नग्नता का द्योतन

प्राचीन बौद्धसाहित्य 'त्रिपिटक' नाम से प्रसिद्ध है। २९ वर्ष ईसा पूर्व श्रीलंका में राजा वट्टगामिनी के समय में प्रथम बार त्रिपिटकों को लिपिबद्ध किया गया।[७१] 'अंगुत्तरनिकाय' त्रिपिटकों में सुत्तपिटक का चौथा ग्रन्थ है। अत: उसकी प्राचीनता प्रमाणित है। उसमें एक 'निगण्ठसुत्त' है, जिसमें निर्ग्रन्थों के दस असद्धर्मों (दोषों) का वर्णन किया गया है। उनमें एक निर्लज्जता नामक असद्धर्म भी बतलाया गया है। सुत्त का वह अंश इस प्रकार है—

"**दसहि भिक्खवे असद्धम्मेहि समन्नागता निगण्ठा। कतमेहि दसहि? अस्सद्धा भिक्खवे निगण्ठा। दुस्सीला भिक्खवे निगण्ठा। अहिरिका भिक्खवे निगण्ठा।** ---" (अंगुत्तरनिकाय / भा.४ / आकङ्खवग्गो / निगण्ठसुत्त)।

अनुवाद—"भिक्षुओ! निर्ग्रन्थों में दस असद्धर्म हैं। कौन से दस असद्धर्म? भिक्षुओ! निर्ग्रन्थ श्रद्धारहित हैं। भिक्षुओ! निर्ग्रन्थ दु:शील हैं। भिक्षुओ! निर्ग्रन्थ अह्रीक (निर्लज्ज) हैं।"

यहाँ अह्रीकता (निर्लज्जता) नामक असद्धर्म का उल्लेख कर निर्ग्रन्थों की नग्नता का द्योतन किया गया है, क्योंकि लोक में नग्न रहना निर्लज्जता का लक्षण माना गया है। श्वेताम्बर-साहित्य में भी कहा गया है—

"**तिहिं ठाणेहिं वत्थं धारेज्जा। तं जहा-हिरिपत्तियं, दुगुंछापत्तियं, परीसह-पत्तियं।**" (स्था.सू./३/३/३४७/पृ.१५०)।

अनुवाद-"तीन कारणों से वस्त्रधारण करना चाहिए : ह्री (लज्जा) का अनुभव होने पर, जुगुप्सा की प्रतीति होने पर तथा परीषह-सहन की सामर्थ्य न होने पर।"

प्रवचनपरीक्षा नामक श्वेताम्बरग्रन्थ में दिगम्बर मुनियों की निन्दा करते हुए कहा गया है—"**वस्त्राभावे च रासभादिवदविशेषेण लज्जाराहित्यं स्यात्।** (१/२/३०/पृ. ९१)। अर्थात् वस्त्रधारण न करने पर गर्दभ आदि पशुओं के समान निर्लज्जता प्रकट होती है।"

इसी कारण बौद्धसाहित्य और श्वेताम्बरसाहित्य में दिगम्बरजैन मुनियों को अह्रीक कहा गया है। बौद्ध वंशसाहित्य के **दाठावंस** (१३वीं शताब्दी ई०) में भी निगण्ठों

---

७१. जातकपालि / भा.२ / प्रस्ता./ पृ.११/ विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, १९९८ ई०।

को अह्रीक कहे जाने का उदाहरण मिलता है। यथा—

इमे अहिरिका सव्वे सद्धादिगुणवज्जिता।
थद्धा सठा च दुप्पञ्चा सग्गमोक्खविबन्धका॥ ८८॥

इति सो चिन्तयित्वान गुहसीवो नराधिपो।
पव्वाजेसि सकारट्ठा **निगण्ठे ते असेसके**॥ ८९॥[७२]

बौद्ध नैयायिक कमलशील ने भी जैनों का 'अह्रीक' नाम से उल्लेख किया है—"**अह्रीकादयश्चोदयन्ति**" (स्याद्वादपरीक्षा प्र./ तत्त्वसंग्रह / पृ.४८६)। 'वाचस्पति अभिधानकोष' में भी 'अह्रीक' शब्द का अर्थ 'दिगम्बरजैन मुनि' बतलाया गया है—"**अह्रीकः क्षपणके तस्य दिगम्बरत्वेन लज्जाहीनत्वात् तथात्वम्।**" 'हेतुविन्दुतर्कटीका' में जैनमुनि के धर्म का निर्देश 'क्षपणक' और 'अह्रीक' नाम से हुआ है तथा श्वेताम्बराचार्य श्री वादिदेवसूरि ने अपने 'स्याद्वादरत्नाकर' ग्रन्थ (पृ.२३०) में दिगम्बर जैनों का उल्लेख 'अह्रीक' शब्द से किया है।[७३]

इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि **अंगुत्तरनिकाय** में नग्नत्वजन्य निर्लज्जता-रूप असद्धर्म (बौद्धों के अनुसार) के कारण ही निर्ग्रन्थों को **अहिरिका** (अह्रीक) कहा गया है। श्वेताम्बर मुनियों को 'अहिरिका' कहे जाने का कोई कारण ही नहीं है। अतः अंगुत्तरनिकाय जैसे प्राचीन बौद्धग्रन्थ में भी दिगम्बरजैन मुनियों के लिए ही 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग हुआ है। प्राचीन बौद्धसाहित्य में निर्ग्रन्थों के लिए **अचेलक** शब्द का भी व्यवहार हुआ है। अंगुत्तरनिकाय (भा.३) के 'छळभिजातिसुत्त' में पूरण कस्सप ने अचेलक साधुओं के श्वेतवस्त्रधारी श्रावकों को हरिद्राभिजातीय बतलाया है। ये अचेलक साधु आजीविक सम्प्रदाय के नहीं थे, क्योंकि आजीविकों को पूरण कस्सप ने उसी सुत्त में शुक्ल और परमशुक्ल अभिजातियों में वर्गीकृत किया है। अतः सिद्ध है कि उक्त अचेलक साधु निर्ग्रन्थ ही थे। तथा अंगुत्तरनिकाय (भा.३) के उसी 'छळभिजातिसुत्त' में श्वेतवस्त्रधारी श्रावक अचेलकों के श्रावक कहे गये हैं—"**गिही ओदातवसना अचेलसावका**" और दीघनिकाय (भा.३) के 'पासादिकसुत्त' में उन्हें निगण्ठनाटपुत्त का श्रावक बतलाया गया है—"**निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना।**" इससे भी सिद्ध है कि प्राचीन बौद्धसाहित्य में निर्ग्रन्थ साधुओं को नग्न ही माना गया है। ये इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीन बौद्धसाहित्य (त्रिपिटकों) में प्रचुरता से नग्न जैन साधुओं का उल्लेख मिलता है। अतः मुनि श्री कल्याणविजय जी का यह दावा मिथ्या सिद्ध हो जाता है कि बौद्धों के प्राचीन शास्त्रों में नग्न जैन

---

७२. कामताप्रसाद जैन : दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि / पा.टि./ पृ. ५१ से उद्धृत।
७३. देखिए , कामताप्रसाद जैन : दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि / पृ. ४५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

साधुओं का कहीं उल्लेख नहीं है। सत्य यह है कि सम्पूर्ण बौद्धसाहित्य में 'निर्ग्रन्थ' शब्द से श्वेताम्बर साधुओं का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। उनका उल्लेख 'श्वेतवस्त्र' (श्वेतपट) शब्द से हुआ है। इसका प्रमाण नीचे दिया जा रहा है।

१.२. 'अपदान' ग्रन्थ में श्वेतवस्त्र मुनियों का उल्लेख

सुत्तपिटक में पाँच निकाय हैं: दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्तनिकाय, अङ्गुत्तर-निकाय और खुद्दकनिकाय। श्री भरतसिंह उपाध्याय ने **पालिसाहित्य का इतिहास** नामक ग्रन्थ में बतलाया है कि खुद्दकनिकाय प्रथम चार निकायों के बाद का प्रणयन या संकलन है (पृ.२००, २०२)। इस निकाय में सम्राट् अशोक के समय में बुद्धपरिनिर्वाण के २३६ वर्ष बाद पाटलिपुत्र में हुई तृतीय संगीति तक परिवर्धन होते रहे (पृ.८५, २०२)। खुद्दकनिकाय में १५ ग्रन्थ हैं। इनमें भाषा और विषय दोनों की दृष्टि से धम्मपद, सुत्तनिपात, उदान और इतिवुत्तक कालक्रम की अपेक्षा पूर्ववर्ती हैं (पृ.२०३)। इनके बाद जातक और थेरथेरी गाथाओं का स्थान आता है (पृ.२०४)। तत्पश्चात् कालक्रम में बुद्धवंस, चरियापिटक, निद्देस, अपदान, पटिसम्भिदामग्ग, विमानवत्थु, पेतवत्थु एवं खुद्दकपाठ का स्थान है (पृ.२०७)। किन्तु इनमें जो अधिक उत्तरकालीन हैं, वे भी अशोक के काल (ई०पू० ३री शती) से उत्तरवर्ती नहीं हैं (पृ.२०४)। इनका लिपिबद्धीकरण अवश्य ईसापूर्व २९ में हुआ है।

उपर्युक्त ग्रन्थ के अनुसार **अपदान** (संस्कृत 'अवदान') अशोककालीन रचना है (पृ.२०६)। "यह खुद्दकनिकाय के उत्तरकालीन ग्रन्थों में से है। इसमें बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों के पूर्वजन्म के महान् कृत्यों का वर्णन है। जातक के समान इसकी भी कहानी के दो भाग होते हैं: एक अतीत जन्मसम्बन्धी और दूसरा वर्तमान (प्रत्युत्पन्न) जीवन-सम्बन्धी। **अपदान** दो भागों में विभक्त है : थेर अपदान और थेरी अपदान। थेर अपदान में ५५ वर्ग हैं और प्रत्येग वर्ग में १० अपदान हैं। थेरी अपदान में ४ वर्ग हैं और प्रत्येक वर्ग में १० अपदान हैं। इसी ग्रन्थ पर संस्कृत बौद्धसाहित्य का अवदानसाहित्य अधिकांशतः आधारित है।" (पृ.२९८)।

अपदान ग्रन्थ के **थेरी अपदान** भाग में द्वितीय वर्गान्तर्गत **तृतीय अपदान** में **भद्रा कुण्डलकेसी** नामक युवती की प्रव्रज्याकथा का वर्णन है, जिसमें बतलाया गया है कि श्रेष्ठिपुत्री भद्रा, सत्तुक नामक एक चोर युवक से विवाह कर लेती है। लेकिन वह चोर युवक भद्रा की हत्या कर उसके आभूषण लेकर भाग जाना चाहता है। इसके लिए वह बहाना बनाकर भद्रा को एक पर्वत पर ले जाता है। किन्तु, वहाँ भद्रा को उसकी दुरभिसन्धि का पता चल जाता है। अतः वह स्वयं ही उसे पर्वत से ढकेलकर मार डालती है और श्वेतवस्त्र-मुनियों के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण कर

लेती है। प्रव्रज्या-ग्रहण करने का वर्णन निम्नलिखित गाथाओं में किया गया है—

तदाहं पातयित्वान गिरिदुग्गम्हि सत्तुकं।
सन्तिकं सेतवत्थानं उपेत्वा पब्बजिं अहं॥ ३६॥

सण्डासेन च केसे मे लुञ्चित्वा सब्बसो तदा।
पब्बजित्वान समयं आचिक्खिंसु निरन्तरं॥ ३७॥

अनुवाद—"तब मैंने दुर्गम पर्वत पर से सत्तुक (नामक चोर पति) को नीचे ढकेलकर मार डाला और श्वेतवस्त्रधारियों के पास जाकर प्रव्रजित हो गयी। उन्होंने सँड़सी से मेरे सभी बालों का लुंचन कर मुझे प्रव्रज्या प्रदान की, पश्चात् निरन्तर धर्मोपदेश देने लगे।"

यहाँ द्रष्टव्य है कि श्वेताम्बर साधुओं को केवल 'श्वेतवस्त्रधारी' (**सेतवत्थानं= श्वेतवस्त्राणाम्, श्वेतानि वस्त्राणि येषां तेषाम्**) शब्द से अभिहित किया गया है। उसके साथ 'निगण्ठ' विशेष्य का प्रयोग नहीं है। इससे सिद्ध है कि प्राचीन बौद्धसाहित्य में श्वेताम्बर मुनि 'श्वेतवस्त्र' या 'श्वेतपट' शब्द से प्रसिद्ध थे, 'निगण्ठ' (निर्ग्रन्थ) शब्द से नहीं। 'निगण्ठ' शब्द दिगम्बरजैन मुनियों के लिए ही प्रयुक्त होता था, जैसा कि उनके लिए **अहिरिक** (अह्रीक) शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है।

श्वेताम्बर मुनियों के लिए 'श्वेतवस्त्र' या 'श्वेतपट' नाम के प्रयोग की परम्परा उनकी उत्पत्ति के समय से ही देखने को मिलती है, जिसके प्रथम दर्शन प्राचीन बौद्धसाहित्य के उपर्युक्त ग्रन्थ में होते हैं।

२
बुद्धकालीन छह अन्यतीर्थिकों में भगवान् महावीर

गौतम बुद्ध के समय में बौद्धसम्प्रदाय के अतिरिक्त छह अन्य सम्प्रदाय भी थे, जिनके प्रवर्तकों के नाम बौद्धग्रन्थ 'दीघनिकाय' में इस प्रकार बतलाये गये हैं—

"**एकमन्तं निसिन्नो खो सुभद्दो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"येमे, भो गोतम, समणब्राह्मणा सङ्घिनो गणिनो गणाचरिया ञाता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता बहुजनस्स, सेय्यथिदं-पूरणो कस्सपो, मक्खलि गोसालो, अजितो केसकम्बलो, पकुधो कच्चायनो, सञ्जयो बेलट्ठपुत्तो, निगण्ठो नाटपुत्तो, सब्बेते सकाय पटिञ्ञाय अब्भञ्ञिंसु? सब्बेव न अब्भञ्ञिंसु ? उदाहु एकच्चे अब्भञ्ञिंसु एकच्चे न अब्भञ्ञिंसु' ति?"** (सुभद्दपरिब्बाजकवत्थु / महापरिनिब्बानसुत्त / दीघनिकायपालि / भा.२ / पृ. ४०२)।

अनुवाद—"एक ओर बैठे उस सुभद्र परिव्राजक ने भगवान् से प्रश्न किया— 'भो गौतम! सभी श्रमण-ब्राह्मण, संघी, गणी, गणाचार्य, ज्ञानी, यशस्वी, तीर्थंकर, समाज में सम्मानित, जैसे पूरण काश्यप, मक्खलि गोसाल, अजित केशकम्बल, प्रकुध

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कात्यायन, संजय वेलट्ठिपुत्र एवं निगण्ठनाटपुत्र, क्या ये सभी अपने उपदेश में बताये गये (प्रतिज्ञात) सिद्धान्तों को स्वयं साक्षात्कार करके जानते हैं? या सभी नहीं जानते? या इनमें से कुछ जानते हैं, कुछ नहीं जानते?''

इन छह सम्प्रदायप्रवर्तकों में निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के प्रणेता तीर्थंकर महावीर का उल्लेख **निगण्ठनाटपुत्त** नाम से किया गया है। उनके नाम में **निगण्ठ (निर्ग्रन्थ)** शब्द का प्रयोग सूचित करता है कि वे बौद्धसम्प्रदाय में अपरिग्रहात्मक अचेलधर्म के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध थे।

३

अजातशत्रु के एक मंत्री द्वारा निगण्ठनाटपुत्त की प्रशंसा

एक बार पूर्णिमा की रात्रि में राजा अजातशत्रु अपने अमात्यों के साथ छत पर बैठा हुआ था। उसने इच्छा प्रकट की, कि इस समय किसी श्रमण या ब्राह्मण से धर्मचर्चा की जाय, जिससे चित्त प्रमुदित हो उठे? तब उसके किसी मंत्री ने पूर्णकाश्यप की प्रशंसा की, किसी ने मक्खलि गोसाल की, किसी ने अजितकेशकम्बल की, किसी ने प्रक्रुध कात्यायन की, किसी ने सञ्जयवेलट्ठिपुत्त की, किसी ने निगण्टनाटपुत्त की और जीवक कौमारभृत्य (वैद्य) ने गौतमबुद्ध की। निगंठनाटपुत्त (भगवान् महावीर) की प्रशंसा करने वाला मंत्री कहता है—

''**अयं, देव, निगण्ठो नाटपुत्तो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च, ञातो, यसस्सी, तित्थकरो, साधुसम्मतो बहुजनस्स, रत्तञ्ञू, चिरपब्बजितो, अद्धगतो, वयोअनुप्पत्तो। तं देवो निगण्ठं नाटपुत्तं पयिरुपासतु। अप्पेव नाम देवस्स निगण्ठं नाटपुत्तं पयिरुपासतो चित्तं पसीदेय्या**'' ति। (सामञ्ञफलसुत्तं / छ अञ्ञतित्थिया / दीघनिकाय-पालि / भा.१ / पृ. ५३)।

अनुवाद—''देव! ये निगण्ठनाटपुत्त आजकल अपने बृहत् शिष्यसंघ से घिरे रहते हैं, ये गणी हैं, गणाचार्य हैं, तत्त्वज्ञानी हैं, लोकविख्यात हैं, तीर्थंकर (स्वतंत्र मत के प्रतिपादक) हैं, समाज में प्रतिष्ठित हैं, चिर प्रव्रजित हैं और अन्य आचार्यों से वृद्ध भी हैं। अच्छा हो कि देव! उनके पास चलकर धर्मचर्चा करें। हो सकता है, इस धर्मचर्चा से आपका मन प्रमुदित हो उठे।''

४

बुद्धेतर छह तीर्थिकों में निर्ग्रन्थ के आचार का निरूपण

अजातशत्रु उपर्युक्त छह आचार्यों को छोड़कर गौतम बुद्ध के पास जाता है और उनसे श्रामण्य का फल पूछता है। बुद्ध कहते हैं कि इस प्रश्न का उत्तर तुमने किसी

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अन्य श्रमण-ब्राह्मण से पूछा है? तब अजातशत्रु उपर्युक्त छह आचार्यों के मत का निरूपण करता है। वह बतलाता है कि पूरण काश्यप अक्रियवादी है, क्योंकि वह मानता है कि हिंसा, असत्य भाषण, चोरी, परस्त्रीगमन आदि करने-कराने से न कोई पाप होता है, न दान, यज्ञ आदि करने से कोई पुण्य। मक्खलिगोसाल अहेतुवादी है। वह कहता है कि प्राणियों के सुख-दुःख का कोई कारण नहीं है। वे भाग्य या संयोग से ही हुआ करते हैं। अजितकेशकम्बल उच्छेदवादी है। उसकी मान्यता है कि न कोई पुण्य होता है, न पाप, न उनका कोई अच्छा-बुरा फल होता है, न स्वर्ग है, न नरक, न आत्मा, न मोक्ष। देहपात के बाद सब नष्ट हो जाता है। मरने के बाद कुछ भी नहीं रहता। प्रक्रुध कात्यायन अकृतवाद का प्रणेता है। वह मानता है कि संसार के पदार्थ अचल और निष्क्रिय हैं। वे किसी को सुख-दुःख उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हैं। संजयवेलट्ठिपुत्त अनिश्चयवादी है। परलोक के विषय में पूछने पर वह कहता है-"यदि मैं समझूँ कि परलोक है, तभी न मैं आपको बताऊँ कि परलोक है। परन्तु मैं ऐसा भी नहीं कहता, मैं वैसा भी नहीं कहता, मैं अन्यथा (दूसरी तरह से) भी नहीं कहता, मैं यह भी नहीं कहता कि यह नहीं है, मैं यह भी नहीं कहता कि यह नहीं नहीं है। परलोक नहीं है, परलोक है भी और नहीं भी, परलोक न है, न नहीं है।" (सामञ्ञफलसुत्त / छ तित्थियवादा / दीघनिकायपालि/ भा.१/ पृ. ५७-६५)।

इन पाँच दार्शनिकों के मतों का निरूपण करने के बाद राजा अजातशत्रु गौतम बुद्ध से कहता है कि इसी प्रकार एक बार मैंने निगंठनाटपुत्त के पास जाकर श्रमणभाव के पालन का फल पूछा। तब वे बोले—"**इध, महाराज! निगण्ठो चातुयामसंवरसंवुतो होति। कथं च, महाराज! निगण्ठो चातुयामसंवरसंवुतो होति? इध, महाराज! निगण्ठो सब्बवारिवारितो च होति, सब्बवारियुत्तो च, सब्बवारिधुतो च, सब्ब-वारिफुटो च। एवं खो, महाराज! निगण्ठो चातुयामसंवरसंवुतो होति। यतो खो, महाराज! निगण्ठो एवं चातुयामसंवरसंवुतो होति, अयं वुच्चति, महाराज! निगण्ठो गतत्तो च यतत्तो च ठितत्तो चा ति।**" (सामञ्ञफलसुत्त / छ तित्थियवादा / दीघनिकायपालि / भा. १/पृ.६३)।

अनुवाद—"महाराज! निर्ग्रन्थ (जैन साधु) चार संवरों (संयमों) से संवृत (संयत) रहता है। महाराज! निर्ग्रन्थ चार संवरों से संवृत कैसे रहता है? महाराज! निर्ग्रन्थ १. जल के व्यवहार का अधिक से अधिक वारण करता है (ताकि जल में रहने वाले सूक्ष्म जीवों का हनन न हो), २. सभी प्रकार के पापों को धो डालने में तत्पर रहता है, ३. सभी प्रकार के पापों के निवारण से धुतपाप (पापरहित) होता है और ४. भविष्य में होने वाले पापों के निवारण में लगा रहता है। महाराज! इस प्रकार

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

निर्ग्रन्थ चार संवरों से संवृत रहता है। इसीलिए लोक में निर्ग्रन्थ को संसार के विषयों का अनिच्छुक (गतत्तो), संयमी (यतत्तो) और स्थिरवृत्ति (ठितत्तो) कहा जाता है।''

५

तीर्थंकर महावीर की 'निर्ग्रन्थ' संज्ञा क्यों?

उपर्युक्त सात सम्प्रदायों के प्रणेताओं में पाँच नग्न नहीं रहते थे, इसलिए वे निर्ग्रन्थ नाम से प्रसिद्ध नहीं हुए। मक्खलिगोसाल (आजीविक सम्प्रदाय का प्रवर्तक) और तीर्थंकर महावीर नग्न रहते थे, तथापि मक्खलिगोसाल अहेतुवादी था अर्थात् वह मानता था कि प्राणियों के सुख-दु:ख का कोई कारण नहीं है, वे मात्र संयोगजन्य हैं, अत: दु:खनिवृत्ति और सुखप्राप्ति के लिए रागद्वेषादि विकारों के परित्याग का उसके मत में कोई भी स्थान न होना स्वाभाविक है। इसलिए उसका नग्न रहना अपरिग्रहसिद्धान्त पर आधारित नहीं था। फलस्वरूप वह 'निर्ग्रन्थ' संज्ञा का पात्र नहीं हुआ। केवल भगवान् महावीर का नाग्न्यव्रत अपरिग्रह-सिद्धान्त से प्रसूत था, अत: वे ही 'निर्ग्रन्थ' विशेषण के अधिकारी हुए।

६

अन्यतीर्थिकवत् नग्न रहने का निषेध

पूर्वोक्त छह बौद्धेतर दार्शनिकों को बौद्धसाहित्य में अन्यतीर्थिक या तीर्थिक कहा गया है।[७४] उनमें आजीविक (मक्खलिगोशाल के अनुयायी साधु) और निर्ग्रन्थ नग्न रहते थे, शेष अन्यतीर्थिक बौद्ध भिक्खुओं से भिन्न वेषभूषा धारण करते थे। गौतम बुद्ध अपने भिक्खुओं को इन तीर्थिकों का वेष धारण करने से सदा मना करते थे। **महावग्ग** की **नग्गिकपटिक्खेपकथा** में कहा गया है—

''एक समय कोई भिक्षु नग्न होकर भगवान् (गौतम बुद्ध) के पास गया। पास में जाकर बोला–भगवान् ने (आपने) अनेक प्रकार से इच्छाओं को अल्प करने वाले, सन्तुष्ट, सल्लेख (तपस्वी), धुत (अनासक्त), प्रसन्न, अपरिग्रही एवं पौरुषवान् भिक्खु की प्रशंसा की है। भन्ते! यह नग्नता साधक को उपर्युक्त गुणों के विकास में सहायक होती है। अत: अच्छा हो, भन्ते! कि आप भिक्षुओं को नग्न रहने की अनुमति दे दें। भगवान् ने उस भिक्षु के कथन की निन्दा करते हुए कहा—'ओ निकम्मे आदमी! तेरा यह कथन अयुक्त है, अनुचित है, अप्रतिरूप (अननुकूल) है, श्रमणाचार के विरुद्ध है, अत: अविहित एवं अकरणीय है। मोघपुरुष! तूने तीर्थिकों (अन्यतीर्थिकों) के द्वारा

---

७४. क– ''छ अञ्ञतित्थिया'' सामञ्ञफलसुत्तं / दीघनिकायपालि / भा.१ / पृ.५२।
ख– ''अञ्ञतित्थिया परिब्बाजिका''/ महासीहनादसुत्त / वही / पृ.१८४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अपनायी जाने वाली नग्नता कैसे स्वीकार कर ली? तत्पश्चात् भगवान् ने भिक्षुओं को एकत्र कर स्पष्ट आदेश दिया-'भिक्षुओ! किसी भी भिक्षु को तीर्थिकों के समान नग्नता नहीं अपनानी चाहिए। जो अपनायेगा उसे स्थूलात्यय दोष लगेगा।'' पालिमूल इस प्रकार है—

''**तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु नग्गो हुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदोवाच—''भगवा, भन्ते! अनेकपरियायेन अप्पिच्छस्स सन्तुट्ठस्स सल्लेखस्स धुतस्स पासादिकस्स अपचयस्स विरियारम्भस्स वण्णवादी। इदं, भन्ते! नग्गियं अनेक-परियायेन अप्पिच्छताय सन्तुट्ठिताय सल्लेखाय धुतत्ताय पासादिकाय अपचयाय विरियारम्भाय संवत्तति। साधु भन्ते! भगवा भिक्खूनं नग्गियं अनुजानातू'' ति**। विगरहि बुद्धो भगवा—''अननुच्छविकं मोघपुरिस! अननुलोमिकं, अप्पत्तिरूपं, अस्सामणकं, अकप्पियं, अकरणीयं। कथं हि नाम त्वं मोघपुरिस! नग्गियं तित्थियसमादानं समादिय़ि-स्ससि? नेतं मोघपुरिस! अप्पसन्नानं वा पसादाय --- पे० ---।'' विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि-''न, भिक्खवे! नग्गियं तित्थियसमादानं समादियितब्बं। यो समादियेय्य आपत्ति थुल्लच्चयस्सा'' ति। (नग्गिकपटिक्खेपकथा / चीवरक्खन्धक / विनयपिटक-महावग्गपालि / पृ.४९१-९२)।

यहाँ नग्न होकर आये भिक्षु के द्वारा इच्छाओं को अल्प करनेवाले नग्नत्व के अपनाने का समर्थन निश्चितरूप से निर्ग्रन्थों के नग्नत्व की ओर संकेत करता है, क्योंकि आजीविकों के अहेतुवादी होने से उनका नग्नत्व अपरिग्रहसिद्धान्त का प्रतिपादक नहीं था।

७

नग्नता एवं कुशचीरादि धारण करने का निषेध

इसी प्रकार कोई भिक्षु कुशचीर (कुशनिर्मित वस्त्र) पहन कर आया, कोई वल्कलचीर और कोई फलकचीर। कोई केशों से बना कम्बल ओढ़कर आया और कोई बालकम्बल ओढ़कर। कोई उलूकपंखनिर्मित वस्त्र धारण करके आया और कोई मृगचर्म। और प्रत्येक ने इन के धारण करने से वही लाभ बतलाये जो पूर्व में नग्न रहने से बतलाये गये थे। किन्तु भगवान् बुद्ध ने सबकी पूर्ववत् निन्दा की और भिक्षुओं को आमंत्रित कर आदेश दिया—''भिक्षुओ! ये मृगचर्म आदि तीर्थिकों की पहचान हैं, इन्हें धारण नहीं करना चाहिए। जो धारण करेगा उसे स्थूलात्यय दोष लगेगा।''[७५]

---

७५. ''न भिक्खवे! अजिनक्खिपं तित्थियधजं धारेतब्बं। यो धारेय्य आपत्ति थुल्लच्चयस्सा ति।'' कुसचीरादि-पटिक्खेपकथा / चीवरक्खन्धक / विनयपिटक-महावग्गपालि / पृ. ४९२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

यहाँ नग्न रहना और कुश आदि के वस्त्र धारण करना अन्यतीर्थिक (बौद्धेतर सम्प्रदायों के) साधुओं के लक्षण बतलाये गये हैं। उनमें नग्नता केवल निर्ग्रन्थों और आजीविकों का लक्षण थी। अतः स्पष्ट है कि बुद्ध ने आजीविकों और निर्ग्रन्थों की ही नग्नता के अनुकरण का निषेध किया है।

८

एकशाटक-सम्प्रदाय निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय से भिन्न

'उदानपालि' का प्रमाण

श्वेताम्बर मुनि श्री कल्याणविजय जी ने श्वेताम्बर-सम्प्रदाय को प्राचीन सिद्ध करने के लिए बौद्धसाहित्य से एक भ्रान्तिमूलक प्रमाण प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं—

"अब हम देखेंगे कि श्वेताम्बर-सम्प्रदाय की प्राचीनता को सिद्ध करने वाले कुछ प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं या नहीं?

"बौद्धों के प्राचीन पालिग्रन्थों में आजीविकमत के नेता गोशालक के कुछ सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है, जिसमें मनुष्यों की कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र, शुक्ल और परमशुक्ल ये छः अभिजातियाँ बताई गई हैं। इनमें से दूसरी नीलाभिजाति में बौद्धभिक्षुओं और तीसरी लोहिताभिजाति में निर्ग्रंथों का समावेश किया है। इस स्थल में निर्ग्रन्थों के लिए प्रयुक्त बौद्धसूत्र के शब्द इस प्रकार हैं—"**लोहिताभिजाति नाम निग्गंथा एकसाटकाति वदति।**" अर्थात् एक चीथड़ेवाले निर्ग्रन्थों को वह लोहिताभिजाति कहता है। (अंगुत्तरनिकाय/भाग ३/पृ.३८३)।

"इस प्रकार गोशालक ने निर्ग्रन्थों के लिए जो यहाँ **एक चीथड़ेवाले** यह विशेषण प्रयुक्त किया है और इसी प्रकार दूसरे स्थलों में भी अतिप्राचीन बौद्ध लेखकों ने जैन निर्ग्रंथों के लिए **एकसाटक** विशेषण लिखा है, इससे सिद्ध होता है कि बुद्ध के समय में भी महावीर के साधु एक वस्त्र अवश्य रखते थे, तभी अन्य दार्शनिकों ने उनको उक्त विशेषण दिया है।

"कट्टर साम्प्रदायिक दिगम्बर यह 'एक साटक' विशेषण उदासीन निर्ग्रन्थ श्रावकों के लिए प्रयुक्त होने की संभावना करते हैं, परन्तु उन्हें यह मालूम नहीं कि बौद्ध त्रिपिटकों में 'निग्गन्थ' शब्द केवल निर्ग्रन्थ साधुओं के लिए प्रयुक्त हुआ है, श्रावकों के लिए नहीं। जहाँ कहीं भी जैन श्रावकों का प्रसंग आया है, वहाँ सर्वत्र '**निग्गंठस्स नाथपुत्तस्स सावका**' (निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र के श्रावक) अथवा **निग्गंठसावक** (निर्ग्रन्थों के श्रावक) इस प्रकार श्रावक शब्द का ही उल्लेख हुआ है, न कि 'निग्गंथ' शब्द का। इसलिए 'निग्गंठ' शब्द का 'श्रावक' अर्थ लगाना कोरी हठधर्मी है।" (श्र.भ.म./पृ.३२२)।

यहाँ मेरा पहला निवेदन यह है कि मुनिजी ने **अंगुत्तरनिकाय** के उद्धरण को यथावत् प्रस्तुत नहीं किया, अपितु शब्दों में परिवर्तन करके प्रस्तुत किया है। दूसरी बात यह है कि छह अभिजातियों का सिद्धान्त आजीविक-मत के नेता गोशालक का नहीं, अपितु अक्रियवादी पूरण काश्यप का है। प्रमाणार्थ मैं उक्त सिद्धान्त को ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहा हूँ—

"एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदोवाच—"पूरणेन, भन्ते! कस्सपेन छळभिजातियो पञ्ञत्ता—तण्हाभिजाति पञ्ञता, नीलाभिजाति पञ्ञता , लोहिताभिजाति पञ्ञता, हलिद्दाभिजाति पञ्ञता, सुक्काभिजाति पञ्ञता, परमसुक्काभिजाति पञ्ञता।

"तत्रदिं भन्ते! पूरणेन कस्सपेन तण्हाभिजाति पञ्ञत्ता, ओरब्भिका सूकरिका साकुणिका मागविका लुद्दा मच्छघातका चोरा चोरघातका बन्धनागारिका ये वा पनञ्ञे पि केचि कुरूरकम्मन्ता।

"तत्रिदं भन्ते! पूरणेन कस्सपेन नीलाभिजाति पञ्ञत्ता, भिक्खू कण्टकवुत्तिका ये वा पनञ्ञे पि केचि कम्मवादा किरियावादा।

"तत्रिदं भन्ते ! पूरणेन कस्सपेन लोहिताभिजाति पञ्ञत्ता, निगण्ठा एकसाटका।

"तत्रिदं भन्ते! पूरणेन कस्सपेन हलिद्दाभिजाति पञ्ञत्ता, गिही ओदातवसना अचेलक-सावका।

"तत्रिदं भन्ते! पूरणेन कस्सपेन सुक्काभिजाति पञ्ञत्ता, आजीवका आजीव-किनियो।

"तत्रिदं भन्ते! पूरणेन कस्सपेन परमसुक्काभिजाति पञ्ञत्ता, नन्दो वच्छो किसो सङ्किच्चो मक्खलि गोसालो। पूरणेन, भन्ते! कस्सपेन इमा छळभिजातियो पञ्ञत्ता ति।"
(छळभिजातिसुत्त / अंगुत्तरनिकायपालि ६,७,८ निपात / भा.३ / पृ.९३-९४)।

यहाँ प्रत्येक अनुच्छेद में **पूरण कस्सप** नाम दुहराया गया है। इस प्रकार सात बार इस नाम की आवृत्ति हुई है, फिर भी मुनि जी ने 'छह अभिजातियों' के सिद्धान्त को **मक्खलि गोशालक** द्वारा प्रणीत बतलाया है। दूसरी बात यह है कि **पूरण कस्सप** द्वारा प्रज्ञप्त पहली अभिजाति का नाम **तण्हाभिजाति** (तृष्णाभिजाति) है, किन्तु मुनिजी ने उसके स्थान में **कृष्णाभिजाति** नाम लिखा है। कृष्णाभिजाति तो गौतम बुद्ध द्वारा प्रज्ञप्त छह अभिजातियों में से है।[७६] तीसरी बात यह है कि अंगुत्तरनिकाय का मूल पालिपाठ इस प्रकार है—

७६. "अहं खो पनानन्द छळभिजातियो पञ्ञापेमि।---इध पनानन्द एकच्चो कण्हाभिजातियो---।"
(छळभिजातिसुत्त / अंगुत्तरनिकायपालि / ६,७, ८ निपात / भा.३ / पृ. ९४)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

''तत्रिदं भन्ते! पूरणेन कस्सपेन लोहिताभिजाति पञ्ञत्ता, निगण्ठा एकसाटका।''

संस्कृत छाया—तत्रेदं भन्ते! पूरणेन काश्यपेन लोहिताभिजातिः प्रज्ञप्ता, निर्ग्रन्था एकशाटकाः।

हिन्दी अनुवाद—भन्ते! उक्त छह अभिजातियों में पूरण काश्यप ने निर्ग्रन्थों और एकवस्त्रधारी साधुओं को लोहिताभिजाति का बतलाया है।

किन्तु मुनि जी ने उपर्युक्त मूलपाठ के स्थान में निम्नलिखित पाठ लिखा है- **''लोहिताभिजाति नाम निग्गंथा एकसाटकाति वदति।''** और इसका यह अर्थ बतलाया है—''एक चीथड़ेवाले निर्ग्रन्थों को वह लोहिताभिजाति कहता है।''

यहाँ द्रष्टव्य है कि जो शब्द मुनि जी के द्वारा बौद्धसूत्र के शब्द बतलाये गये हैं, वे बौद्धसूत्र से अर्थात् अंगुत्तरनिकाय के उपर्युक्त मूलपाठ से शब्द और वाक्य दोनों दृष्टियों से बहुत भिन्न हैं। उदाहरणार्थ, मुनि जी ने अपने वाक्य में 'नाम' शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु मूलपाठ में 'नाम' शब्द नहीं है। मुनि जी ने 'निग्गंथा' शब्द लिखा है, जबकि मूलपाठ में 'निगण्ठा' पद है और पालिभाषा में 'निग्गंथा' रूप बनता ही नहीं है। मुनि जी ने 'वदति' क्रिया का प्रयोग किया है, जबकि मूलपाठ में 'पञ्ञत्ता' क्रिया है और मूलपाठ में 'पूरणेन कस्सपेन पञ्ञत्ता' इस प्रकार वाक्यरचना कर्मवाच्य रूप है, जबकि मुनि जी ने 'वदति' क्रिया का प्रयोग कर वाक्य को कर्तृवाच्य में परिवर्तित कर दिया है। मुनि जी ने 'एकसाटका' के साथ 'ति' अव्यय प्रयुक्त किया है, जबकि मूलपाठ में उसका अभाव है। इससे लगता है मुनि जी ने मूलग्रन्थ देखने का कष्ट नहीं उठाया और किसी से सुनकर उपर्युक्त वाक्य लिख दिया है। अस्तु।

यहाँ ध्यान देने योग्य मुख्य बात यह है। कि लोहिताभिजाति के उदाहरण में जो **'निगण्ठा एकसाटका'** पद आये हैं उनमें 'एकसाटका' पद 'निगण्ठा' का विशेषण नहीं है, बल्कि दोनों स्वतंत्र पद हैं और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के साधुओं के वाचक हैं। 'निगण्ठा' पद तीर्थंकर महावीर के अनुयायी नग्न साधुओं का वाचक है और 'एकसाटका' पद 'एकसाटक'-सम्प्रदाय के साधुओं का, जो एक वस्त्र धारण करने के कारण इस नाम से प्रसिद्ध थे।

किन्तु उक्त पदों के साथ **'निगण्ठा एकसाटका च'** इस प्रकार भिन्नव्यक्तिसूचक **च** अव्यय का प्रयोग न होने से बाबू कामताप्रसाद जी एवं श्वेताम्बरमुनि श्री कल्याणविजय जी ने 'एकसाटका' पद को 'निगण्ठा' का विशेषण मानकर दोनों पदों को निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के ही साधकों का वाचक मान लिया है। बाबू कामताप्रसाद जी ने उनसे 'निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के क्षुल्लक नामक उत्कृष्ट श्रावक' अर्थ ग्रहण किया है,[७७] क्योंकि

७७. भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध / पृ.६०-६१, २१०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ये एकवस्त्रधारी होते हैं, जब कि मुनि कल्याणविजय जी ने 'श्वेताम्बर साधु' अर्थ लिया है।

ये दोनों अर्थ युक्तिसंगत नहीं है। 'अंगुत्तरनिकाय' के कर्त्ता ने छहों अभिजातियों के उदाहरण में कहीं भी 'च' अव्यय का प्रयोग नहीं किया है, जबकि वे भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्यों के वाचक हैं। जैसे उन्होंने शुक्लाभिजाति में '**आजीवका आजीवकिनियो**' उदाहरण दिये हैं। यहाँ 'च' अव्यय का प्रयोग नहीं है, फिर भी ये दोनों पद भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के वाचक हैं। 'आजीवका' पद आजीवक (आजीविक--देखिये, पा.टि.८८) सम्प्रदाय के साधुओं या गृहस्थों का वाचक है तथा 'आजीवकिनियो' पद इस सम्प्रदाय की साध्वियों या गृहस्थ स्त्रियों का। इसी प्रकार तण्हाभिजाति के '**लुद्दा मच्छघातका चोरा चोरघातका बन्धनागारिका**' इन उदाहरणों में भी 'च' अव्यय प्रयुक्त नहीं है, तथापि ये भिन्न-भिन्न प्रकार के क्रूरकर्मा मनुष्यों के सूचक हैं। '**नन्दो वच्छो, किसो सङ्किच्चो, मक्खलिगोसालो**' ये परमशुक्लाभिजाति के मनुष्यों के उदाहरण हैं। ये भी 'च' अव्यय के बिना ही अलग-अलग व्यक्तियों का अर्थ प्रकट करते हैं। '**निगण्ठा एकसाटका**' इसी प्रकार का प्रयोग है। यहाँ भी 'च' अव्यय का प्रयोग नहीं है, फिर भी दोनों पद स्वतंत्र हैं और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के साधुओं का बोध कराते हैं। 'निगण्ठ' पद दिगम्बरजैन सम्प्रदाय के साधुओं का बोध कराता है और 'एकसाटक' (एकशाटक) पद एकशाटकसम्प्रदाय के साधुओं का। इस सम्प्रदाय के साधु केवल एकवस्त्र धारण करते थे, इसलिए उनका सम्प्रदाय 'एकशाटक' नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ था। **उदानपालि** सुत्तपिटक के खुद्दकनिकाय का प्राचीन ग्रन्थ है। उसके निम्नलिखित कथन से यह बात एकदम स्पष्ट हो जाती है—

"**तेन खो पन समयेन सत्त च जटिला, सत्त च निगण्ठा, सत्त च अचेलका, सत्त च एकसाटका, सत्त च परिब्बाजका, परूळ्हकच्छनखलोमा खारिविविधमादाय भगवतो अविदूरे अतिक्कमन्ति।**" (सत्तजटिलसुत्त / जच्चन्धवग्गो / उदानपालि / पृ. १४३)।

अनुवाद—"(जब गौतम बुद्ध शाम के समय ध्यान में लीन बैठे हुए थे) उस समय सात जटिल (जटाधारी साधु), सात निर्ग्रन्थ (निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के साधु), सात अचेलक (अचेलक=आजीवक-सम्प्रदाय के साधु), सात एकशाटक (एकवस्त्रधारी-सम्प्रदाय के साधु) और सात परिव्राजक (परिव्राजक-सम्प्रदाय के साधु), जिनकी काँख, नख और लोम बढ़े हुए थे तथा जो विविध उपकरण लिए हुए थे, आकर भगवान् बुद्ध के पास बैठ गये।"

इस कथन में एकशाटक साधुओं को निर्ग्रन्थों से पृथक् निर्दिष्ट किया गया है, इससे स्पष्ट है कि 'एकशाटक' 'निर्ग्रन्थ' का विशेषण नहीं, अपितु निर्ग्रन्थादि से भिन्न

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सम्प्रदाय के साधुओं का वाचक है। अतः मुनि श्री कल्याणविजय जी ने '**निगण्ठा एकसाटका**' इस उल्लेख से जो यह अर्थ निकाला है कि बुद्ध के समय में निर्ग्रंथ साधु एक वस्त्र अवश्य रखते थे,अतः यह उल्लेख श्वेताम्बर-सम्प्रदाय की प्राचीनता का प्रमाण है, वह सर्वथा गलत है। उक्त उल्लेख में 'निर्ग्रन्थ' शब्द 'एकशाटक' विशेषण से रहित है, अतः सिद्ध है कि प्राचीन बौद्ध-साहित्य में 'निर्ग्रन्थ' साधु निर्ग्रन्थ रूप (नग्नरूप) में ही वर्णित हैं। इससे दिगम्बरजैन-सम्प्रदाय की प्राचीनता प्रमाणित होती है। फलस्वरूप मुनि कल्याणविजय जी का यह दावा भी गलत सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन बौद्ध साहित्य में नग्न जैन साधुओं का उल्लेख कहीं भी नहीं है। और जो दावा उन्होंने निम्नलिखित वक्तव्य में किया है, वह भी औंधे मुँह गिर जाता है। वे प्रो० जैकोबी के कथन को प्रामाणिक मानने का दावा करते हुए लिखते हैं—

''बौद्धों की अर्वाचीन जातककथाओं में निर्ग्रन्थ श्रमणों को 'नग्न निर्ग्रन्थ' लिखा देखकर कोई कह दे कि 'प्राचीन निर्ग्रन्थ भी नग्न होते थे' तो ऐसे आंशिक ज्ञानवालों के कथन से प्राचीन श्रमणों की नग्नता साबित नहीं हो सकती। जिन्होंने बौद्धों के सबसे प्राचीन पालिग्रन्थों और प्राचीन जैनसूत्रों का तलस्पर्शी अध्ययन किया है, ऐसे विद्वानों की सम्मति ही इस विषय में अधिक विश्वसनीय हो सकती है। डॉक्टर हर्मन जैकोबी इसी प्रकार के विद्वान् हैं और इन्होंने जैनसूत्रों की प्रस्तावना में प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों के उल्लेखों से यह बात अच्छी तरह सिद्ध कर दी है कि प्राचीन निर्ग्रन्थ श्रमण एक वस्त्र रखते थे। इसीलिए बौद्ध लोग इन्हें 'एकसाटक' कहा करते थे।''(श्र.भ.म./ पृ.३१८-३१९)।

यहाँ मुनि जी ने प्राचीन बौद्धसाहित्य में 'एकसाटक' (एकशाटक) शब्द के प्रयोग को निर्ग्रन्थ श्रमणों के एकवस्त्रधारी होने का प्रमाण इसलिए माना है कि प्राचीन बौद्धसाहित्य के तलस्पर्शी अध्येता डॉ० जैकोबी ने ऐसा कहा है। किन्तु जैकोबी के अध्ययन की तलस्पर्शिता पर **उदानपालि** का उपर्युक्त प्रमाण प्रश्नचिन्ह लगा देता है। **उदानपालि** के उपर्युक्त उद्धरण से सिद्ध है कि 'एकशाटक' निर्ग्रन्थों का विशेषण नहीं, अपितु एक स्वतंत्रसम्प्रदाय का नाम है, अतः उसे निर्ग्रन्थों का विशेषण मानकर प्राचीन निर्ग्रन्थों को एक वस्त्र रखनेवाला घोषित करना भ्रान्तिपूर्ण निष्कर्ष है। अतः मुनि जी का जैकोबी के निष्कर्ष को प्रामाणिक मानने का दावा भी धराशायी हो जाता है।

जैकोबी के सभी निष्कर्ष सही हों यह मुनि श्री कल्याणविजय जी भी नहीं मानते। वे लिखते हैं—''उत्तराध्ययनसूत्र के उपोद्घात में प्रो० जैकोबी ने आजीविक और निर्ग्रन्थों के आचारों की एकता बताई है, पर वास्तव में इन दोनों सम्प्रदायवालों के आचारों में बहुत बड़ा अन्तर था। यद्यपि मज्झिमनिकाय में आजीविकों के कठिनतम तप और भिक्षा के नियमों का वर्णन है, तथापि सब आजीविक भिक्षुओं द्वारा सदाकाल

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ये ही नियम पालन किये जाते थे, यह मान लेना भूल होगी।'' (श्र.भ.म./ पृ.२६७-२६८)।

यही भूल जैकोबी ने प्राचीन निर्ग्रन्थों को 'एकवस्त्र रखनेवाला' मानने में की है, तथा किसी अँग्रेज विद्वान् ने **ओदातवसना** का अर्थ 'श्वेतवस्त्रवाला' किया है, इससे असहमत होने के कारण मुनि कल्याणविजय जी ने टिप्पणी की है कि ''अँग्रेज कोई केवली नहीं हैं, जो उनके कहने से **अवदात** (**ओदात**) का अर्थ श्वेत ही मान लिया जाय और अन्यवर्ण न माना जाय।''(श्र.भ.म./पृ.३२३)।

मुनि जी की यह टिप्पणी मैं जैकोबी के विषय में भी दुहराना चाहता हूँ कि जर्मन विद्वान् कोई केवली नहीं हैं, जो उनके कहने से 'एकसाटक' पद को 'निर्ग्रन्थ' का विशेषण मान लिया जाय। वस्तुतः वह एक स्वतंत्र सम्प्रदाय का नाम था।

९

निर्ग्रन्थों के लिए भी 'अचेलक' शब्द का प्रयोग

'उदानपालि' के पूर्वोक्त उद्धरण में निर्ग्रन्थों और अचेलकों का अलग-अलग निर्देश है, इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि अचेलक (आजीविक) सम्प्रदाय के ही मुनि नग्न रहते थे, निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के नहीं। दोनों सम्प्रदायों के मुनि नग्न रहते थे, किन्तु 'निर्ग्रन्थ' शब्द दिगम्बर जैन साधुओं के लिए रूढ़ हो चुका था। अतः उनसे भिन्नता का बोध कराने के लिए आजीवक (आजीविक) सम्प्रदाय के साधु 'अचेलक' शब्द से अभिहित किये जाने लगे। 'उदानपालि' के पूर्वोक्त उद्धरण में 'अचेलक' शब्द आजीवकों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। बौद्धों में निर्ग्रन्थों का नग्न रहना तो 'निर्ग्रन्थ' (ग्रन्थरहित = वस्त्रादिपरिग्रहरहित) शब्द से ही प्रसिद्ध था।

तथापि बौद्धसाहित्य में निर्ग्रन्थों के लिए भी 'अचेलक' शब्द का प्रयोग हुआ है, इसके अनेक प्रमाण हैं। अंगुत्तरनिकाय (भा.३) के **छळभिजातिसुत्त** में पूरण कस्सप ने अचेलक साधुओं के श्वेतवस्त्रधारी श्रावकों को हरिद्राभिजातीय बतलाया है—

''पूरणेन कस्सपेन हलिद्दाभिजाति पञ्ञत्ता, गिही ओदातवसना[७८] अचेल-कसावका।''[७९]

ये अचेलक साधु आजीवक (आजीविक) सम्प्रदाय के नहीं थे, क्योंकि आजीवकों को पूरण कस्सप ने शुक्ल और परमशुक्ल अभिजातियों में परिगणित किया है।[७९]

---

७८. ओदातवसन = श्वेतवस्त्रधारी / भदन्त आनन्द कौसल्यायन-कृत पालि-हिन्दी कोश / पृ. ८१।
७९. देखिये, अंगुत्तरनिकायपालि भा.३ का पूर्वोद्धृत अंश (अध्याय ४/प्र.२/शी.८)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अतः सिद्ध है कि उपर्युक्त वाक्य में निर्ग्रन्थों को ही 'अचेलक' शब्द से अभिहित किया गया है।

दूसरा प्रमाण यह है कि 'अंगुत्तरनिकाय' के उपर्युक्त वाक्य में श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ अचेलकों के श्रावक कहे गये हैं और 'दीघनिकाय' के निम्नलिखित वाक्य में वे निगण्ठनाटपुत्त (भगवान् महावीर) के श्रावक बतलाये गये हैं—

"**निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना।**" (पासादिकसुत्त / दीघ-निकायपालि / भा. ३ / पृ. ६८३)।

इससे बिलकुल स्पष्ट है कि प्राचीन बौद्धसाहित्य में 'निर्ग्रन्थों' का कथन 'अचेलक' शब्द से भी हुआ है।

तीसरा प्रमाण यह है कि मज्झिमनिकाय (प्रथम भाग) में निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक एवं दीघनिकाय (प्रथम भाग) में अचेल काश्यप का प्रसंग है। 'निर्ग्रन्थपुत्र' विशेषण से ज्ञात होता है कि सच्चक निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के श्रावक का पुत्र था तथा 'अचेल' विशेषण सूचित करता है कि काश्यप नग्न साधु थे। ये दोनों गौतम बुद्ध के समक्ष अचेलक आजीवक साधुओं के अशोभनीय आचार का वर्णन करते हैं। यदि अचेल काश्यप स्वयं आजीवक साधु होते तो, ऐसा न करते। इससे सिद्ध है कि वे निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के साधु थे। इसके अतिरिक्त निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक और अचेल काश्यप दोनों आजीविकों के अशोभनीय आचार का वर्णन करते हैं, इससे भी दोनों का समान (निर्ग्रन्थ) सम्प्रदाय से सम्बद्ध होना सूचित होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन बौद्ध साहित्य में निर्ग्रन्थ साधुओं को भी 'अचेलक' विशेषण दिया गया है।

निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक और अचेल काश्यप आजीवकों के जिस अशोभनीय आचार का वर्णन करते हैं, उसे निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक तो स्पष्ट शब्दों में आजीवकों का आचार कहता है, अचेल काश्यप स्पष्ट शब्दों में नहीं कहते, पर वह सच्चक द्वारा वर्णित आचार से अक्षरशः साम्य रखता है, इससे सिद्ध है कि वह आजीवकों का ही आचार है। दोनों के द्वारा वर्णित आचार नीचे उद्धृत किया जा रहा है।

१०

निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक द्वारा वर्णित आजीविकों का आचार

निर्ग्रन्थ सच्चक का गौतम बुद्ध के साथ इस प्रकार वार्तालाप होता है—

"एकमन्तं निसिन्नो खो सच्चको निगण्ठपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—सन्ति भो गोतम! एके समणब्राह्मणा कायभावनानुयोगमनुयुत्ता विहरन्ति, नो चित्तभावनं---।"

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अतः सिद्ध है कि उपर्युक्त वाक्य में निर्ग्रन्थों को ही 'अचेलक' शब्द से अभिहित किया गया है।

दूसरा प्रमाण यह है कि 'अंगुत्तरनिकाय' के उपर्युक्त वाक्य में श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ अचेलकों के श्रावक कहे गये हैं और 'दीघनिकाय' के निम्नलिखित वाक्य में वे निगण्ठनाटपुत्त (भगवान् महावीर) के श्रावक बतलाये गये हैं—

"**निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना।**" (पासादिकसुत्त / दीघ-निकायपालि / भा. ३ / पृ. ६८३)।

इससे बिलकुल स्पष्ट है कि प्राचीन बौद्धसाहित्य में 'निर्ग्रन्थों' का कथन 'अचेलक' शब्द से भी हुआ है।

तीसरा प्रमाण यह है कि मज्झिमनिकाय (प्रथम भाग) में निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक एवं दीघनिकाय (प्रथम भाग) में अचेल काश्यप का प्रसंग है। 'निर्ग्रन्थपुत्र' विशेषण से ज्ञात होता है कि सच्चक निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के श्रावक का पुत्र था तथा 'अचेल' विशेषण सूचित करता है कि काश्यप नग्न साधु थे। ये दोनों गौतम बुद्ध के समक्ष अचेलक आजीवक साधुओं के अशोभनीय आचार का वर्णन करते हैं। यदि अचेल काश्यप स्वयं आजीवक साधु होते तो, ऐसा न करते। इससे सिद्ध है कि वे निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के साधु थे। इसके अतिरिक्त निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक और अचेल काश्यप दोनों आजीविकों के अशोभनीय आचार का वर्णन करते हैं, इससे भी दोनों का समान (निर्ग्रन्थ) सम्प्रदाय से सम्बद्ध होना सूचित होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन बौद्ध साहित्य में निर्ग्रन्थ साधुओं को भी 'अचेलक' विशेषण दिया गया है।

निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक और अचेल काश्यप आजीवकों के जिस अशोभनीय आचार का वर्णन करते हैं, उसे निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक तो स्पष्ट शब्दों में आजीवकों का आचार कहता है, अचेल काश्यप स्पष्ट शब्दों में नहीं कहते, पर वह सच्चक द्वारा वर्णित आचार से अक्षरशः साम्य रखता है, इससे सिद्ध है कि वह आजीवकों का ही आचार है। दोनों के द्वारा वर्णित आचार नीचे उद्धृत किया जा रहा है।

१०

निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक द्वारा वर्णित आजीविकों का आचार

निर्ग्रन्थ सच्चक का गौतम बुद्ध के साथ इस प्रकार वार्तालाप होता है—

"एकमन्तं निसिन्नो खो सच्चको निगण्ठपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—सन्ति भो गोतम! एके समणब्राह्मणा कायभावनानुयोगमनुयुत्ता विहरन्ति, नो चित्तभावनं---।"

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"किन्ति पन ते, अग्गिवेस्सन! कायभावना सुता" ति?

"सेय्यथीदं—नन्दो वच्छो, किसो सङ्किच्चो, मक्खलि गोसालो—एते हि भो गोतम! अचेलका मुत्ताचारा हत्थापलेखना, न एहिभद्दन्तिका न तिट्ठभद्दन्तिका, न अभिहटं, न उद्दिस्सकतं, न निमन्तनं सादियन्ति, ते न कुम्भिमुखा पटिग्गण्हन्ति, न कळोपिमुखा पटिग्गण्हन्ति, न एळकमन्तरं न दण्डमन्तरं न मुसलमन्तरं, न द्विन्नं भुञ्जमानानं, न गब्भिनिया न पायमानाय न पुरिसन्तरगताय, न सङ्कित्तीसु, न यत्थ सा उपट्ठितो होति, न यत्थ मक्खिका सण्डसण्डचारिनी, न मच्छं न मंसं न सुरं न मरेयं न थुसोदकं पिवन्ति। ते एकागारिका वा होन्ति एकालोपिका, द्वागारिका वा होन्ति द्वालोपिका--- पे० ---सत्तागारिका वा होन्ति सत्तालोपिका। एकिस्सा पि दत्तिया यापेन्ति, द्वीहि पि दत्तीहि यापेन्ति---पे० ---सत्तहि पि दत्तीहि यापेन्ति। एकाहिकं पि आहारं आहारेन्ति, द्वीहिकं पि आहारं आहारेन्ति ---पे०---सत्ताहिकं पि आहारं आहारेन्ति। इति एवरूपं अद्धमासिकं पि परियायभत्त-भोजनानुयोगमनुयुत्ता विहरन्ती" ति।

"किं पन ते अग्गिवेस्सन! तावतकेनेव यापेन्ती" ति?

"नो हिदं, भो गोतम! अप्पेकदा, भो गोतम! उळारानि उळारानि खादनीयानि खादन्ति, उळारानि उळारानि भोजनानि भुञ्जन्ति, उळारानि उळारानि सायनीयानि सायन्ति, उळारानि उळारानि पानानि पिवन्ति। ते इमं कायं बलं गाहेन्ति नाम, ब्रूहेन्ति नाम, मेदेन्ति नामा" ति।

"यं खो ते, अग्गिवेस्सन! पुरिमं पहाय पच्छा, उपचिनन्ति, एवं इमस्स कायस्स आचयापचयो होति।" (महासच्चकसुत्त / मज्झिमनिकायपालि / १. मूल पण्णासक / पृ. ३२६-३२८/ बौद्धभारती, वाराणसी)।

अनुवाद

एक ओर बैठे हुए निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक ने भगवान् (गौतम बुद्ध) से कहा—"हे गौतम! कुछ श्रमण-ब्राह्मण ऐसे हैं, जो कायसाधना में लगे रहते हैं, चैतसिक साधना नहीं करते।"

गौतम ने पूछा—"भो अग्निवेश![८०] तुमने कैसी कायसाधना के विषय में सुना है?"

सच्चक बोला—"जैसे नन्द वत्स, कृश सांकृत्य, मक्खलि गोशाल, ये नग्न रहते हैं, स्वच्छन्द आचरण करते हैं, भोजन के बाद हस्तापलेखना करते हैं अर्थात् हाथ

८०. सच्चक का नामान्तर।

चाटते हैं।[८१] वे बुलाकर दी गई भिक्षा नहीं लेते, 'ठहरिये' कहकर दी गई भिक्षा नहीं लेते, दूसरे के द्वारा लायी गयी भिक्षा नहीं लेते, अपने उद्देश्य से बनाई गई भिक्षा नहीं लेते, निमंत्रित करके दी गई भिक्षा नहीं लेते, हाँड़ी से उड़ेलकर दी गई भिक्षा नहीं लेते, कड़ाही से उड़ेलकर दी गई भिक्षा नहीं लेते, दो पटरों, दो दण्डों और दो मूसलों के बीच से लायी गयी भिक्षा नहीं लेते, भोजन करते हुए दो व्यक्तियों के बीच से लायी गयी भिक्षा नहीं लेते, गर्भिणी और दूध पिलाती हुई स्त्री से भिक्षा नहीं लेते, दो पुरुषों के बीच से आती हुई स्त्री से भिक्षा ग्रहण नहीं करते, चन्दा करके भिक्षा देनेवाली स्त्रियों (सङ्कित्तीसु) से भिक्षा नहीं लेते, जहाँ कुत्ता (सा=श्वा) खड़ा होता है, वहाँ से भिक्षा नहीं लेते, जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही हों, वहाँ से भिक्षा नहीं लेते, मांस-मछली, सुरा, मैरेय और तुषोदक (चावल से बनी शराब) ग्रहण नहीं करते। वे एक ही घर से भिक्षा लेते हैं या एक ही ग्रास खाते हैं, दो घरों से भिक्षा लेते हैं या दो ग्रास खाते हैं, सात घरों से भिक्षा लेते हैं या सात ग्रास खाते हैं। वे एक कलछुल-भिक्षा से भी निर्वाह कर लेते हैं, दो कलछुल-भिक्षा से भी और सात कलछुल-भिक्षा से भी। वे एक दिन में एक बार भी आहार करते हैं, दो दिन में एक बार भी और सात दिन में एक बार भी। कभी-कभी पन्द्रह-पन्द्रह दिनों के बाद भी आहार लेते हैं।''

गौतम बुद्ध पूछते हैं—''हे अग्निवेश! क्या इतने से ही उनका निर्वाह हो जाता है?

सच्चक उत्तर देता है—''ऐसा नहीं है गौतम! वे कभी-कभी प्रभूतमात्रा[८२] में खाद्य पदार्थ खाते हैं, प्रभूतमात्रा में भोज्य पदार्थों का भोजन करते हैं, प्रभूतमात्रा में स्वाद्य पदार्थों का स्वाद लेते हैं और प्रभूतमात्रा में पेय पदार्थों का पान करते हैं। इससे उनके शरीर की शक्ति बढ़ती रहती है, वे पुष्ट एवं बलवान् होते रहते हैं।

गौतम कहते हैं—''यह तो पहले त्याग करना और फिर ग्रहण करना है। इस तरह तो शरीर कभी दुबला और कभी मोटा हो जाता है।'' (अनुवादक : स्वामी द्वारिकादास शास्त्री)। इस आचार को निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक ने स्पष्टशब्दों में नन्द वत्स, कुश सांकृत्य और मक्खलि गोशाल का आचार बतलाया है, जो आजीविक-सम्प्रदाय के थे।

---

८१. हत्थापलेखना = भोजन के बाद हाथ चाटना (पालि-हिन्दी कोश)।

८२. उळारानि-उळारानि (उदाराणि-उदाराणि) = प्रभूत मात्रा में (पालि-हिन्दी कोश)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

११

अचेल काश्यप द्वारा वर्णित आजीविकों का आचार

एक बार अचेल काश्यप गौतम बुद्ध के पास जाकर पूछते हैं—"भो गौतम! लोग कहते हैं कि श्रमण गौतम सभी प्रकार की तपश्चर्याओं की निन्दा करते हैं।[८३] आप बतलायें कि श्रमणब्राह्मणों के ये आचार श्रमणभाव और ब्राह्मणभाव के द्योतक हैं या नहीं?"[८४] तत्पश्चात् वे श्रमणब्राह्मणों के आचार का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

"अचेलको होति मुत्ताचारो, हत्थापलेखनो, न एहिभद्दन्तिको, नतिट्ठभद्दन्तिको, नाभिहटं, न उद्दिस्सकतं न निमन्तनं सादियति। सो न कुम्भिमुखा पटिग्गण्हाति, न कळोपिमुखा पटिग्गण्हाति, न एळकमन्तरं, न दण्डमन्तरं, न मुसलमन्तरं, न द्विन्नं भुञ्जमानानं, न गब्भिनिया, न पायमानाय, न पुरिसन्तरगताय, न सङ्कित्तीसु, न यत्थ सा उपट्ठितो होति, न यत्थ मक्खिका सण्डसण्डचारिनी, न मच्छं न मसं, न सुरं न मेरयं न थुसोदकं पिवति। सो एकागारिको वा होति एकालोपिको, द्वागारिको वा होति द्वालोपिको, सत्तागारिको वा होति सत्तालोपिको; एकिस्सा पि दत्तिया यापेति, द्वीहि पि दत्तीहि यापेति, सत्तहि पि दत्तीहि यापेति; एकाहिकं पि आहारं आहारेति, द्वीहिकं पि आहारं आहारेति, सत्ताहिकं पि आहारं आहारेति; इति एवरूपं अद्धमासिकं पि परियायभत्तभोजनानुयोगमनुयुत्तो विहरति।"(महासीहनादसुत्त / दीघनिकायपालि / भा.१ / पृ.१७६-१७७)।

गौतम बुद्ध इस आचार को श्रमण-ब्राह्मणत्व से शून्य बतलाते हैं।[८५] उन्होंने भी कुछ समय के लिए इस आचार को अपनाया था। वे अपने शिष्य सारिपुत्र को यह बात सुनाते हुए कहते हैं—

"तत्रास्सु मे इदं, सारिपुत्त, तपस्सिताय होति-अचेलको होमि मुत्ताचारो हत्थापलेखनो, न एहिभद्दन्तिको, न तिट्ठभद्दन्तिको, नाभिहटं, न उद्दिस्सकतं न निमन्तनं सादयामि --- इति एवरूपं अद्धमासिकं पि परियायभत्तभोजनानुयोगमनुयुत्तो विहरामि।" (महासीहनादसुत्त / मज्झिमनिकायपालि/१.मूलपण्णासक/पृ. ११८-११९ बौद्धभारती, वाराणसी)।

---

८३. "एकमन्तं ठितो खो अचेलो कस्सपो भगवन्तं एतदवोच—"सुतं मेतं, भो गोतम! समणो गोतमो सब्बं तपं गरहति।" महासीहनादसुत्त / दीघनिकायपालि / भाग १/ पृ. १७२।

८४. "इमे पि खो, आवुसो गोतम! तपोपक्कमा एतेसं समणब्राह्मणानं सामञ्ञसङ्खाता च ब्रह्मञ्ञसंखाता च।" महासीहनादसुत्त / दीघनिकायपालि / भाग १/पृ. १७६।

८५. वही/पृ.१७८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in.

तुलना करने पर हम पाते हैं कि निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक और अचेल कस्सप दोनों के द्वारा वर्णित आचार शब्दशः साम्य रखते हैं। अतः अचेल कस्सप द्वारा वर्णित आचार भी आजीविक साधुओं का ही है। बाबू कामताप्रसाद जी ने इसे निर्ग्रन्थों का आचार बतलाया है,[८६] जिसका मुनि श्री कल्याणविजय जी ने खण्डन किया है। वे लिखते हैं—

"मज्झिमनिकाय में साफ-साफ लिखा गया है कि ये आचार आजीविकसंघ के नायक गोशालक तथा उनके मित्र नन्दवच्छ और किस्ससंकिच्च के हैं जिनका बुद्ध के समक्ष निग्गंथश्रमण सच्चक ने वर्णन किया है।" (श्र.भ.म./पृ. ३३१)।

यद्यपि बाबू कामताप्रसाद जी ने निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक द्वारा वर्णित आचार को नहीं, अपितु अचेल कस्सप द्वारा वर्णित आचार को निर्ग्रन्थ मुनियों का आचार कहा है,[८६] तथापि वह आजीविक साधुओं का ही आचार है, जैसाकि ऊपर दर्शाये गये साम्य से स्पष्ट है। इसीलिए, मुनि जी का उसे आजीविकसंघ के साधुओं का आचार कहना उचित ही है।

किन्तु मुनि जी का यह कथन युक्तिसंगत नहीं है कि "यदि निर्ग्रन्थ जैन श्रमण सच्चक स्वयं अचेलक और हाथ में भोजन करनेवाला होता तो, वह आजीविक भिक्षुओं का 'हाथ चाटनेवाला' आदि कहकर उपहास कभी न करता। इससे भी जाना जाता है कि महावीर के साधु वस्त्रपात्र अवश्य रखते थे।" (श्र.भ.म./पृ.३२३)।

मुनि जी का यह कथन प्रत्यक्षप्रमाण से बाधित है, क्योंकि अचेल कस्सप ('अचेलो कस्सपो'—पा.टि.८३) ने अचेलक होते हुए भी अचेलक आजीविकों को 'हाथ चाटने वाला' आदि कहा है। इससे द्योतित होता है कि अचेल कस्सप यद्यपि स्वयं अचेलक थे, और पाणितलभोजी भी थे, तथापि भोजन के अनन्तर वे हाथ नहीं चाटते थे, न स्वच्छन्द आचरण करते थे और न ही वे उन साधुओं में से थे, जो कभी-कभी पन्द्रह-पन्द्रह दिनों तक भोजन नहीं करते थे, किन्तु कभी-कभी खाद्य, स्वाद्य, भोज्य और पेय पदार्थों का अतिगृध्रता से सेवन करते थे। निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक और अचेल कस्सप ने आजीविकों की इन्हीं अशोभनीय प्रवृत्तियों को अनुचित बतलाया है, अचेलत्व और पाणितलभोजित्व को नहीं। अतः आजीवक साधुओं की उक्त अशोभनीय और लोलुपतापूर्ण प्रवृत्तियों को दर्शाने से निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक और अचेल कस्सप का सचेल श्वेताम्बर-साधु होना सिद्ध नहीं होता। चूँकि दोनों ने आजीवकों के अशोभनीय और लोलुपतापूर्ण आचार का वर्णन किया है, इससे सिद्ध होता है कि वे एक ही सम्प्रदाय के थे। अचेल कस्सप तो निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के नग्न साधु ही थे, निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक

८६. भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध/पृ. ६१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

निर्ग्रन्थसम्प्रदाय का श्रावक था, क्योंकि उसके साथ जुड़े निर्ग्रन्थपुत्र विशेषण में 'पुत्र' शब्द का प्रयोग हुआ है। इस प्रमाण से भी सिद्ध होता है कि प्राचीन बौद्धसाहित्य में निर्ग्रन्थों को 'अचेलक' शब्द से भी अभिहित किया गया है। इस प्रमाण से मुनि कल्याणविजय जी का यह निष्कर्ष मिथ्या सिद्ध हो जाता है कि महावीर के साधु वस्त्रपात्र अवश्य रखते थे।

१२
निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के श्रावक की भी 'निर्ग्रन्थ' संज्ञा

दीघनिकाय (भा.३ / पासादिकसुत्त) के "**निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स सावका गिही ओदात-वसना**" (महावीर के श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ श्रावक) इस कथन के आधार पर बाबू कामता प्रसाद जी ने '**निगण्ठा एकसाटका**'[८७] का अर्थ एक श्वेतवस्त्रधारी निर्ग्रन्थ श्रावक किया है।

इस पर मुनि कल्याणविजय जी ने दो आपत्तियाँ की हैं। पहली तो यह कि 'निगण्ठा' शब्द निर्ग्रन्थसाधु का वाचक है, न कि निर्ग्रन्थश्रावक का। दूसरी यह कि 'अवदात' (ओदात) का अर्थ श्वेत नहीं, उज्ज्वल अथवा स्वच्छ होता है।

'निगण्ठ' शब्द के अर्थ के विषय में वे लिखते हैं कि "बौद्ध त्रिपिटकों में 'निग्गन्थ' शब्द केवल निर्ग्रन्थ साधुओं के लिए प्रयुक्त हुआ है, श्रावकों के लिए नहीं। जहाँ कहीं भी जैन श्रावकों का प्रसंग आया है, वहाँ सर्वत्र '**निगंठस्स नाथपुत्तस्स सावका**' (निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र के श्रावक) अथवा **निगंठसावक** (निर्ग्रन्थों के श्रावक) इस प्रकार 'श्रावक' शब्द का ही उल्लेख हुआ है, न कि 'निग्गंथ' शब्द का। इसलिए 'निग्गंठ' शब्द का 'श्रावक' अर्थ लगाना कोरी हठधर्मी है।" (श्र.भ.म./ पृ.३२२)।

मुनि जी का यह कथन समीचीन नहीं है। बौद्ध त्रिपिटकों में 'निगण्ठ' शब्द का प्रयोग निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के साधु और श्रावक अथवा निर्ग्रन्थ श्रमण और उनके अनुयायी श्रावक दोनों के लिए हुआ है। सुत्तपिटकगत मज्झिमनिकाय (प्रथमभाग) के 'चूळसच्चकसुत्त' एवं 'महासच्चकसुत्त' में सच्चक को 'निगण्ठपुत्त' (निर्ग्रन्थपुत्र) कहा गया है। निगण्ठपुत्त का अर्थ निर्ग्रन्थमुनि का पुत्र नहीं हो सकता, क्योंकि मुनि सन्तान उत्पन्न नहीं करते। अतः उसका अर्थ है निर्ग्रन्थों के अनुयायी श्रावक का पुत्र। जैसे वर्तमान में दिगम्बरजैन-सम्प्रदाय के श्रावक भी दिगम्बरजैन कहलाते हैं, वैसे ही प्राचीनकाल में निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के श्रावक भी निर्ग्रन्थ कहलाते थे, क्योंकि उस समय 'जैनसम्प्रदाय'

---

८७. देखिए , इसी प्रकरण का शीर्षक क्र.८, छळभिजातिसुत्त / अंगुत्तरनिकायपालि (६,७,८ निपात / भा.३ / पृ.९३-९४) का उद्धृत अंश।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

'निर्ग्रन्थसम्प्रदाय' के नाम से ही प्रसिद्ध था। आजीविक सम्प्रदाय के साधु और श्रावक भी 'आजीविक' नाम से ही जाने जाते थे। अशोक के दिल्ली (टोपरा) स्तम्भाभिलेख में ब्राह्मणों, आजीविकों एवं निर्ग्रन्थों का उल्लेख हुआ है।[८८] वहाँ 'आजीविक' (या 'आजीवक') और 'निर्ग्रन्थ शब्दों से केवल नग्न साधु अर्थ अपेक्षित नहीं है, अपितु सम्प्रदाय-विशेष के नग्नसाधुओं से अभिप्राय है। अतः ये नाम उस समय सम्प्रदाय-विशेष के भी वाचक थे। इसलिए बौद्ध पिटकसाहित्य में निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के श्रमण और श्रावक दोनों के लिए 'निगण्ठ' संज्ञा का प्रयोग हुआ है।

मुनि श्री कल्याणविजय जी ने निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक को 'निर्ग्रन्थ जैन श्रमण सच्चक' कहा है (श्र.भ.म./पृ.३२३), यह भ्रान्तिपूर्ण है। सम्पूर्ण बौद्धसाहित्य में निर्ग्रन्थश्रमण को कहीं भी 'निर्ग्रन्थपुत्र' शब्द से सम्बोधित नहीं किया गया। भगवान् महावीर को भी 'निगण्ठपुत्त' नहीं कहा गया, अपितु 'निगण्ठनातपुत्त' कहा गया है, जिसका अर्थ है नाथपुत्र (नाथवंशीय) या ज्ञातृपुत्र (ज्ञातृवंशीय) निर्ग्रन्थ श्रमण। इस पर प्रकाश डालते हुए पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री लिखते हैं—

"दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों इस बात से सहमत हैं कि महावीर कुण्डपुर या कुण्डग्राम के राजा सिद्धार्थ के पुत्र थे। और सिद्धार्थ दिगम्बरीय उल्लेखों के अनुसार णाह-वंश[८९] या नाथवंश के क्षत्रिय थे और श्वेताम्बरीय उल्लेखों के अनुसार णायकुल के थे।[९०] इसी से महावीर को णायकुलचन्द्र और णायपुत्त कहा है।

"णाह, णाय, णात ये सब शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं। इसी से 'बुद्धचर्या' में भी राहुल जी ने नाटपुत्त का अर्थ ज्ञातृपुत्र और नाथपुत्र दोनों किया है। अतः दिगम्बरों के अनुसार महावीर नाथपुत्र थे, तो श्वेताम्बरों के अनुसार ज्ञातृपुत्र थे। अतः बौद्धग्रन्थों में निर्दिष्ट णातपुत्त अवश्य ही जैनतीर्थङ्कर महावीर हैं। उस समय जाति और देश के आधार पर इस तरह के नामों के व्यवहार करने का चलन था। जैसे बुद्ध को शाक्यपुत्र कहा है, क्योंकि वे शाक्यवंश के थे और उनका जन्म शाक्य देश (कपिलवस्तु) में हुआ था। इसी से उनके अनुयायी श्रमण शाक्यपुत्रीय-श्रमण कहे जाते थे (बुद्धचर्या/

---

८८. "बाभनेसु आजीविकेसु पि मे कटे इमे वियापटा होहंतीति। निगंठेसु पि मे कटे इमे वियापटा होहंति।" जैनशिलालेखसंग्रह / माणिकचन्द्र / भा.२ / लेख क्र. १।

८९. क— कुण्डपुरपुरवरिस्सर सिद्धत्थक्खत्तियस्स णाहकुले।
तिसिलाए देवीए देवीसदसेवमाणाए ॥ २३॥ जयधवला / क.पा./भा.१/पृ. ७८।
ख— णाहोग्गवंसेसु वि वीर-पासा ॥ ४/५५७॥ तिलोयपण्णत्ती।
ग— उग्रनाथौ पार्श्ववीरौ। (दशभक्ति/पृ. २४८)।

९०. "णातपुत्ते महावीरे एवमाहजिणुत्तमे।" सूत्रकृतांग १/१/१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पृष्ठ ५५१)। इसी तरह महावीर भी अपनी जाति तथा वंश के आधार पर णाटपुत्त कहे जाते थे और उनके अनुयायी निर्ग्रन्थ 'नाथपुत्रीय निगंठ' कहे जाते थे (बुद्धचर्या/ पृ. ४८१)'' (जै.सा.इ./ पू.पी./ पृ. २२३-२२४)।

इस कथन से स्पष्ट होता है कि निर्ग्रंथश्रमणों के अनुयायी श्रावक का पुत्र होने से ही सच्चक को निर्ग्रन्थपुत्र कहा गया है, न कि स्वयं के निर्ग्रन्थश्रमण होने से। यदि स्वयं निर्ग्रन्थ श्रमण होता तो उसे निर्ग्रंथ ही कहा जाता, निर्ग्रन्थपुत्र नहीं। सच्चक के निर्ग्रन्थ श्रावक होने के अन्य प्रमाण भी हैं, यथा—

१. भगवान् बुद्ध से वाद करते समय सच्चक के माथे से पसीने की बूँदे टपकने लगती हैं और उसके उत्तरासंग (उत्तरीय=दुपट्टे) को भेद कर भूमि पर गिर जाती हैं। उसकी इस दशा को सूचित करते हुए बुद्ध उससे कहते हैं—''**तुय्हं खो पन, अग्गिवेस्सन, अप्पेकच्चानि सेदफुसितानि नलाटामुत्तानि, उत्तरासङ्गं विनिभिन्दित्वा भूमियं पतिट्ठितानि।**'' (चूळसच्चकसुत्त / मज्झिमनिकायपालि / १.मूलपण्णासक / पृ. ३२१ / बौद्ध भारती, वाराणसी)।

इससे ज्ञात होता है कि सच्चक दुपट्टा ओढ़े हुआ था और दुपट्टा ओढ़ने से सिद्ध होता है कि वह अधोवस्त्र भी धारण किये होगा। इससे उसका एक शाटक (एकवस्त्रधारी) न होना सूचित होता है। यह पहला प्रमाण है कि सच्चक न तो मुनि श्री कल्याणविजय जी की मान्यतानुसार एक वस्त्रधारी श्वेताम्बर साधु था, न बाबू कामताप्रसाद जी के मतानुसार निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय का 'एलक' नामक उत्कृष्ट श्रावक, अपितु वह एक सामान्य गृहस्थ था।

२. सच्चक गौतम बुद्ध को भोजन के लिए अपने बगीचे में आमन्त्रित करता है और नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बनवाकर बुद्ध तथा उनके सम्पूर्ण भिक्षुसंघ को अपने हाथ से परोसकर भोजन कराता है। यह बात निम्नलिखित शब्दों में कही गई है—

''**अथ खो सच्चको निगण्ठपुत्तो सके आरामे पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि—''कालो, भो गोतम, निट्ठितं भत्तं'' ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन सच्चकस्स निगण्ठ-पुत्तस्स आरामो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पञ्ञते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो सच्चको निगण्ठपुत्तो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि।**''(चूळसच्चकसुत्त / मज्झिमनिकायपालि / १. मूलपण्णासक/ पृ.३२५ / बौद्ध-भारती, वाराणसी)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किसी निर्ग्रन्थ श्रमण का न तो अपना कोई घर होता है, न कोई बागबगीचा, न इतना धनधान्य और नौकर-चाकर आदि परिग्रह कि एक बहुत बड़े भिक्षुसंघ को भोजन करा सके। यह सब एक गृहस्थ के ही हो सकता है। कोई श्रमण किसी को अपने हाथ से भोजन भी नहीं परोसता। अतः यह दूसरा प्रमाण है कि सच्चक श्रमण नहीं था, एक सामान्य गृहस्थ था।

४. निर्ग्रन्थश्रमण तो क्या, वह निर्ग्रन्थश्रावक का पुत्र होते हुए भी स्वयं निर्ग्रन्थों का अनुयायी नहीं था, क्योंकि वह गौतम बुद्ध से स्वयं कहता है कि मैंने मक्खलि गोसाल, अजित केसकम्बल, प्रक्रुध कात्यायान, सञ्जय वेलट्ठपुत्त के अलावा निगण्ठनाटपुत्त से भी शास्त्रार्थ (वाद) किया था—

"**अभिजानामहं, भो गोतम, मक्खलिं गोसालं --- पे०--- अजितं केसकम्बलं --- पकुधं कच्चायनं--- सञ्जयं बेलट्ठपुत्तं ---निगण्ठं नाटपुत्तं वादेन वादं समारभिता। सो पि मया वादेन वादं समारद्धो अञ्ञेनञ्ञं पटिचरि, बहिद्धा कथं अपनामेसि, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पात्वाकासि।**"(महासच्चकसुत्त / मज्झिम-निकायपालि / १. मूलपण्णासक / पृ. ३४५ / बौद्धभारती, वाराणसी)।

जो भगवान् महावीर से भी शास्त्रार्थ कर सकता है, वह उनका शिष्य भी नहीं हो सकता, तब उनके निर्ग्रन्थसम्प्रदाय का श्रमण होने की तो बात ही दूर। बाबू कामताप्रसाद जी ने भी **भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध** नामक ग्रन्थ में कहा है कि "सच्चक एक जैनी का पुत्र होते हुए भी जैन नहीं है।" (पृ.२०१)। उन्होंने यह भी लिखा है कि "सच्चक का यह कथन तथ्य नहीं रखता कि उसने महावीर स्वामी को वाद (शास्त्रार्थ) में परास्त किया था, क्योंकि वह स्वयं महात्मा बुद्ध से 'वाद' में पराजित हुआ है।" (पृ. २०१)।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि निगण्ठपुत्त सच्चक निर्ग्रन्थों के अनुयायी श्रावक का पुत्र था, और निर्ग्रन्थश्रावक का पुत्र होते हुए भी स्वयं निर्ग्रंथश्रावक नहीं था, अपितु एक अनिर्ग्रन्थ गृहस्थ था। उसकी विशेषता सिर्फ यह थी कि वह वादपण्डित अर्थात् शास्त्रार्थप्रवीण था।[९१] अतः मुनि कल्याणविजय जी की यह मान्यता भ्रान्तिपूर्ण है कि सच्चक श्रमण था।

चूँकि सच्चक निर्ग्रन्थ श्रमण नहीं था, और न किसी निर्ग्रन्थ श्रमण का पुत्र हो सकता था, फिर भी उसे निर्ग्रन्थपुत्र कहा गया है, इससे स्पष्ट है कि वह निर्ग्रन्थों

९१. "तेन खो पन समयेन सच्चको निगण्ठपुत्तो वेसालियं पटिवसति भस्सप्पवादको पण्डितवादो साधुसम्मतो बहुजनस्स।" चूळसच्चकसुत्त / मज्झिमनिकायपालि / १. मूलपण्णासक / पृ. ३१३.५ बौद्धभारती, वाराणसी।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

के अनुयायी श्रावक का पुत्र था। यह इस बात का प्रमाण है कि बौद्ध-त्रिपिटक-साहित्य में निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के श्रावकों को भी 'निर्ग्रन्थ' शब्द से सम्बोधित किया गया है।

इसका बहुत स्पष्ट प्रमाण **जातक-अट्ठकथा** (तृतीय भाग) की **चूलकालिङ्ग-जातकवण्णना** में मिलता है। इसमें न केवल निर्ग्रन्थश्रावक को 'निर्ग्रन्थ' शब्द से अभिहित किया गया है, अपितु निर्ग्रन्थश्राविका के लिए भी 'निर्ग्रन्थी' शब्द व्यवहृत हुआ है। यथा—

"विवरथिमासं द्वारन्ति इदं सत्था जेतवने विहरन्तो चतुन्नं परिब्बाजिकानं पब्बज्जं आरब्भ कथेसि। वेसालियं किर लिच्छविराजूनं सत्त सहस्सानि सत्त सतानि सत्त च लिच्छवी वसिंसु। ते सब्बेपि पुच्छापटिपुच्छाचित्तका अहेसुं। अथेको पञ्चसु वादसतेसु ब्यत्तो **निगण्ठो** वेसालियं सम्पापुणि, ते तस्य सङ्गहं अकंसु। अपरापि एवरूपा **निगण्ठी** सम्पापुणि। राजानो द्वेपि जने वादं कारेसुं, उभोपि सदिसाव अहेसुं। ततो लिच्छवीनं एतदहोसि "इमे द्वेपि पटिच्च उप्पन्नो पुत्तो ब्यत्तो भविस्सती" ति। तेसं विवाहं कारेत्वा द्वेपि एकतो वासेसुं। अथ नेसं संवासमन्वाय पटिपाटिया चतस्सो दारिकायो एको च दारको जायि। दारिकानं 'सच्चा', 'लोला', 'अवधारिका', 'पटिच्छादा' ति नामं अकंसु दारकस्य 'सच्चको' ति। ते पञ्चपि जना विञ्ञुतं पत्ता मातितो पञ्च वादसतानि, पितितो पञ्च वादसतानीति वादसहस्सं उग्गण्हिंसु। मातापितरो दारिकानं एवं ओवदिंसु-"सचे कोचि गिही तुम्हाकं वादं भिन्दिस्सति, तस्स पादपरिचारिका भवेय्याथ। सचे पब्बजितो भिन्दिस्सति, तस्स सन्तिके पब्बजेय्या था" ति। अपरभागे मातापितरो कालमकंसु। तेसु कालकतेसु **सच्चकनिगण्ठो** तत्थेव वेसालियं लिच्छवीनं सिप्पं सिक्खापेन्तो वसि।"[९२]

यह केवल प्रासंगिक पालिमूल यहाँ दिया गया है। सम्पूर्ण कथा का श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन-कृत हिन्दी अनुवाद नीचे दिया जा रहा है। उन्होंने इसे **चुल्लकालिंग-जातक** नाम से वर्णित किया है।

चुल्लकालिङ्ग-जातक

वैशाली में सात हजार सात सौ सात लिच्छवी-राजा रहते थे। वे सभी शास्त्रार्थ-कुशल थे। एक बार एक पाँच सौ वादों (मतों) में पंडित निर्ग्रन्थ वैशाली पहुँचा। उन्होंने उसका आदर-सत्कार किया। एक दूसरी उसी तरह की निर्ग्रन्थी भी आ पहुँची। राजाओं ने दोनों का शास्त्रार्थ कराया। दोनों बराबर रहे। तब लिच्छवियों ने

---

९२. चूळकालिङ्गजातकवण्णना / खुद्दकनिकाये जातक-अट्ठकथा / भा.३ / पृ. १-२ / विपश्यना विशोधन विन्यास इगतपुरी, सन् १९९८ ई.।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सोचा—'इन दोनों से उत्पन्न पुत्र मेधावी होगा।' उन्होंने दोनों का विवाह कराकर, उन्हें एक जगह बसाया। दोनों के सहवास से क्रमशः चार लड़कियाँ और एक लड़का पैदा हुआ। लड़कियों का सच्चा, लोला, अववादका (अवधारिका) और पटाचारा (पाटिच्छादा) नाम रखा गया तथा लड़के का सच्चक। उन पाँचों ने बड़े होने पर माता से पाँच सौ वाद और पिता से पाँच सौ वाद, इस प्रकार एक हजार वाद सीख लिये। माता-पिता ने लड़कियों को यह नसीहत दी कि यदि कोई गृहस्थ तुम्हें शास्त्रार्थ में हरा दे, तो उसकी चरण-दासियाँ बन जाना और यदि कोई प्रव्रजित हरा दे तो उसके पास प्रव्रजित हो जाना। समय बीतने पर माता-पिता चल बसे।

उनके मरने पर सच्चक निर्ग्रन्थ वहीं वैशाली में लिच्छवियों को शिल्प (विद्या) सिखाता हुआ रहने लगा। बहनों ने जम्बु-शाखा ले, शास्त्रार्थ के लिए नगर-नगर घूमना आरम्भ किया। श्रावस्ती पहुँच उन्होंने नगर-द्वार पर शाखा गाड़ दी और बालकों से कहा कि जो हमसे शास्त्रार्थ कर सके, वह गृहस्थ हो या प्रव्रजित, इस बालू की ढेरी को पाँव से बिखेर कर इस जम्बु-शाखा को पाँव से ही कुचल दे। यह कहकर वे भिक्षार्थ नगर में गईं।

आयुष्मान् सारिपुत्र बिना बुहारी जगह को बुहार कर खाली घड़ों में पानी भर, और रोगियों की सेवा कर दिन चढ़ने पर भिक्षार्थ निकले। उन्होंने वह शाखा देखी, और लड़कों से पूछा। लड़कों के बतलाने पर उन्होंने उसे लड़कों से ही गिरवाकर कुचलवा दिया और उनसे कहा कि जिन्होंने यह शाखा गाड़ी हो, वे भोजन समाप्त कर जेतवन की ड्योढ़ी पर आकर मुझसे मिलें। भिक्षा से लौट कर भोजनान्तर वे विहार की ड्योढ़ी पर ही रहे। उन परिव्राजिकाओं ने भी भिक्षा से लौट, उस शाखा को मर्दित देखकर पूछा—

"इसे किसने कुचला?"

"सारिपुत्र स्थविर ने। यदि तुम शास्त्रार्थ करना चाहो, तो विहार की ड्योढ़ी पर जाओ।"

बच्चों से यह सुन, वे फिर नगर में गईं और जनता को इकट्ठा कर विहार की ड्योढ़ी पर पहुँची। वहाँ उन्होंने स्थविर से एक हजार प्रश्न पूछे। स्थविर ने उत्तर देकर पूछा—

"और भी कुछ जानती हो?"

"स्वामी! नहीं जानतीं।"

"मैं कुछ पूछूँ?"

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन: 0731-2571851 मो.: 8989505108 e-mail: sanskarsagar@yahoo.co.in

"स्वामी पूछें। जानती होंगी, तो कहेंगी।"

स्थविर ने पूछा—"एक बात क्या है?"

वे नहीं बता सकीं, तब स्थविर ने बतायी। इस पर वे बोलीं—

"स्वामी! हमारी पराजय हुई। आपकी जय हुई।"

"अब क्या करोगी?"

"हमारे माता-पिता ने हमसे कहा था कि यदि गृहस्थ से पराजित हुईं, तो उसकी गृहिणी बन जाना और यदि प्रव्रजित से पराजित हुईं, तो उनके पास प्रव्रजित हो जाना। आप हमें प्रव्रजित करें।"

स्थविर ने 'अच्छा' कहकर उन्हें उत्पलवर्णा स्थविरी के पास प्रव्रजित कराया। सभी शीघ्र ही अर्हत्व को प्राप्त हुईं।

भिक्षुओं ने धर्मसभा में चर्चा की—आयुष्मानो! सारिपुत्र स्थविर ने चारों परिव्राजिकाओं का सहायक हो, सभी को अर्हत्व प्राप्त करा दिया।[९३]

इस कथा में निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के शास्त्रार्थकुशल श्रावक-श्राविका को 'निर्ग्रन्थ' और 'निर्ग्रन्थी' शब्दों से सम्बोधित किया गया है। वे श्रमण और श्रमणी नहीं थे, यह इसी बात से सिद्ध है कि वैशाली के शास्त्रार्थनिपुण 'सात हजार सात सौ सात' लिच्छवी राजागणों और अन्य धर्मवृद्ध लोगों ने, जो संभवतः निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के ही रहे होंगे, उनका विवाह कराना उचित समझा और वे निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी भी इसके लिए तैयार हो गये। यदि वे मुनि और आर्यिका होते, तो पहले तो स्वयं ऐसा पापकर्म करने में लज्जित होते, पुनः यदि वे निर्लज्ज होकर ऐसा कदम उठाते, तो वैशाली के शास्त्रार्थकुशल लिच्छवी-राजागण और अन्य धर्मवृद्ध उन्हें ऐसा करने से रोकते, क्योंकि धर्म और सामाजिक मर्यादाओं की रक्षा करने का उत्तरदायित्व उन पर था। अतः वे श्रावक-श्राविका ही थे, फिर भी उनके लिए 'निर्ग्रन्थ' और 'निर्ग्रन्थी' शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त उनसे जो चार पुत्रियों के अतिरिक्त एक 'सच्चक' नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ था, वह वैशाली में रहकर ही लिच्छवियों को शिल्प सिखाने लगा था, जिससे सूचित होता है कि वह गृहस्थ ही था। उसके लिए भी कथा में 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग किया गया है। संभवतः सच्चक वही निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक है, जिसका वर्णन 'मज्झिमनिकायपालि' (भा.१) के 'महासच्चकसुत्त' में हुआ है। ये प्रयोग इस

---

९३. अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन/ चुल्लकालिंगजातक / परिच्छेद ४/जातक/तृतीय खण्ड/ पृ. १७२-१७३ / हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सन् १९९० ई.।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

बात के प्रमाण हैं कि बौद्धसाहित्य में निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के श्रावकों को भी 'निर्ग्रन्थ' शब्द से सम्बोधित किया गया है, क्योंकि अन्य सम्प्रदायों से उनकी भिन्नता दर्शाने के लिए इसके अतिरिक्त और कोई शब्द ही नहीं था। इसलिए मुनि श्री कल्याणविजय जी का यह कथन समीचीन नहीं है कि बौद्धसाहित्य में सर्वत्र जैन श्रावकों का कथन 'निगंठसावक' या 'निगंठस्स नाथपुत्तस्स सावका' शब्दों से हुआ है, 'निगण्ठ' शब्द से भी हुआ है, यह उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है।

१३

'ओदातवसन' का अर्थ श्वेतवस्त्रधारी

मुनि श्री कल्याणविजय जी की दूसरी आपत्ति यह है कि 'ओदातवसन' में 'ओदात' (अवदात) का अर्थ श्वेत नहीं, अपितु उज्ज्वल अथवा स्वच्छ है और उज्ज्वल श्वेत भी हो सकता है और अन्यवर्ण भी। (श्र.भ.म./पृ.३२३)। किन्तु संस्कृत-हिन्दीकोश तथा पालि-हिन्दीकोश में 'ओदात' एवं 'अवदात' का अर्थ श्वेत भी मिलता है। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने अपने पालि-हिन्दीकोश में 'ओदातवसन' का अर्थ एकमात्र 'श्वेतवस्त्रधारी' ही किया है।

तथा सम्राट् अशोक के सारनाथ-लघुस्तम्भलेख में लिखा है कि जो भिक्षु या भिक्षुणी संघ में भेद उत्पन्न करेगा, उसे अवदातवस्त्र धारण कराकर एकान्त स्थान में रखा जायेगा—"**भिखू वा भिखुनि वा संघं भाखति से ओदातानि दुसानि सनंधापयि या आनावाससि आवासयिये।**"[९४]

यहाँ ध्यान देने योग्य है कि बौद्ध भिक्खु लाल रंग के वस्त्र पहनते थे, आज भी पहनते हैं। उन्हें संघभेद करने के दण्डस्वरूप अवदात दूष्य (वस्त्र) धारण कराकर अलग रखने की चेतावनी दी गई है। क्या यहाँ लाल रंग के वस्त्रों को उज्ज्वल करके पहनाने का आशय है? ऐसा करना दण्ड होगा या पुरस्कार? वस्तुतः **रक्तपट** बौद्ध भिक्खु-भिक्खुनियों का धार्मिक वेश है। उसे छीनकर श्वेतवस्त्र पहनाने से ही बहिष्काररूप दण्ड फलित हो सकता है। अतः यहाँ **अवदातवस्त्र** से श्वेतवस्त्र अर्थ ही अभिप्रेत है।

तात्पर्य यह कि उपर्युक्त धार्मिक प्रकरणों में 'अवदातवस्त्र' शब्द श्वेतवस्त्र अर्थ का ही वाचक है। अतः दीघनिकायपालि (भा. ३) के 'पासादिकसुत्त' में कथित "**ये पि निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना**" इस वाक्य का "महावीर के श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ श्रावक" यह अर्थ स्वीकार करना सर्वथा उचित है।

---

९४. सारनाथ-लघुस्तम्भलेख / 'भारतीय पुरालेखों का अध्ययन': डॉ. शिवरूप सहाय/ पृ. १३.५५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१४

'दिव्यावदान' में निर्ग्रन्थ-श्रमण का नग्नरूप

'दिव्यावदान' संस्कृत में लिखित प्राचीन बौद्धग्रन्थ है। विद्वानों ने इसका रचनाकाल प्रथम शताब्दी ई० माना है।[९५] इसकी सर्वप्रथम खोज **श्री बी. एच. हॉजसन** (Hodgson) ने नेपाल में की थी। और इसका पहला सम्पादन **कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय** के संस्कृत के प्रोफेसर श्री **एफ० बी० कावेल** (Cowell) एवं व्याख्याता श्री **आर० ए० नील** (Neil) ने रोमनलिपि में किया है। इस ग्रन्थ की भाषा मिश्र (Hybrid) संस्कृत है, क्योंकि इसमें पालिभाषा के शब्दों और प्रयोगों का मिश्रण है। इसमें अपाणिनीय प्रयोग भी अनेकत्र हैं, तथा ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं जिनका प्रयोग संस्कृतसाहित्य में उपलब्ध नहीं होता। कई शब्द ऐसे हैं, जिनका व्यवहार अपरिचित अर्थ में किया गया है। ये ग्रन्थ की प्राचीनता के लक्षण हैं। इनका विस्तार से विवेचन श्री 'कावेल' और 'नील' ने 'दिव्यावदान' की भूमिका में किया है।

'दिव्यावदान' में एक 'प्रतिहार्यसूत्र' नाम की कथा है, जिसमें निर्ग्रन्थ श्रमणों को नग्नवेशधारी बतलाया गया है। कथा का सार यह है कि निर्ग्रन्थ श्रमण 'पूरण काश्यप' गौतम बुद्ध से ऋद्धिप्रातिहार्य-प्रदर्शन (चमत्कार-प्रदर्शन) की प्रतिस्पर्धा में पराजित और यक्ष द्वारा उत्पन्न आतंक से भयभीत होकर भाग जाता है तथा गले में बालुकाघट बाँधकर शितिका नामक पुष्पकरिणी में कूदकर आत्महत्या कर लेता है। उसके अनुयायी निर्ग्रन्थ-श्रमण उसे ढूँढ़ते हुए मार्ग में एक गणिका को देखकर पूछते हैं—"क्या तुमने पूरण निर्ग्रन्थ को देखा है, जिसका शरीर धर्मवस्त्र से आवृत था?" गणिका कहती है—"वह तो शितिका पुष्करिणी में डूबकर मर गया।" निर्ग्रन्थ श्रमण कहते हैं—"**ऐसा मत कहो। वह तो धर्मवस्त्र से शरीर को आवृत कर धर्माचरण करनेवाला मुनि है।**" गणिका कहती है—

"**वह अज्ञानी पुरुष बुद्धिमान् कैसे हो सकता है, जो लोगों के सामने नग्न होकर गाँव में घूमता-फिरता है, जिसका 'धर्म' लिंग का प्रदर्शन करना है ('यस्यायमीदृशो धर्मः पुरस्ताल्लम्बते दशा') उसके तो दोनों कान राजा को छुरे से कटवा देने चाहिए।**"

वे निर्ग्रन्थ श्रमण 'शितिका' नामक पुष्पकरिणी (सरोवर) पर जाते हैं और देखते हैं कि पूरण काश्यप उसमें मरा पड़ा है। वे उसके शव को पुष्करिणी से निकालते हैं और एक तरफ छोड़कर चले आते हैं। कथा का प्रासंगिक संस्कृत मूलपाठ नीचे दिया जा रहा है—

---

९५. बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास / पृ. ४३७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"**अथ पूरणो निर्ग्रन्थो** बालुकाघटं कण्ठे बद्ध्वा शितिकायां पुष्किरिण्यां[९६] पतितः। स तत्रैव कालगतः। अथ ते निर्ग्रन्थाः पूरणं मृगयमाणाः प्रतिमार्गे गणिकां दृष्ट्वा पृच्छन्ति— भद्रे! कञ्चित् त्वमद्राक्षीर्गच्छन्तमिह पूरणं **धर्मशाटप्रतिच्छन्नं** कटच्छव्रतभोजनम्? गणिका प्राह—

आपायिको नैरयिको मुक्तहस्तावचारकः।
स्वेताभ्यां[९७] पाणिपादाभ्यां एष ध्वंसति पूरणः॥
भद्रे मैवं वोचस्त्वं नैतत्तव सुभाषितम्।
धर्मशाटप्रतिच्छन्नो धर्मं सञ्चरते मुनिः॥

गणिका प्राह—

कथं स बुद्धिमान् भवति पुरुषो व्यञ्जनान्वितः।
लोकस्य पश्यतो योऽयं ग्रामे चरति नग्नकः॥
यस्यायमीदृशो धर्मः पुरस्ताल्लम्बते दशा।
तस्य वै श्रवणौ राजा क्षुरप्रेणावकृन्ततु॥

अथ ते निर्ग्रन्था येन शितिका पुष्किरिणी तेनोपसङ्क्रान्ताः। अद्राक्षुस्ते निर्ग्रन्थाः पूरणं काश्यपं पुष्किरिण्यां मृतं कालगतम्। दृष्ट्वा च पुनः पुष्किरिण्या उद्धृत्यैकान्ते छोरयित्वा प्रकान्ताः।"[९८]

यहाँ जिस पूरण काश्यप की चर्चा है, वह अक्रियवादी पूरण काश्यप से भिन्न है, क्योंकि अक्रियवादी पूरण काश्यप निर्ग्रन्थसम्प्रदाय का नहीं था, किन्तु यह निर्ग्रन्थसम्प्रदाय का था।

इस कथा में बतलाया गया है कि निर्ग्रन्थ पूरण काश्यप के अनुयायी निर्ग्रन्थ उसके शव को पुष्करिणी से निकालकर एकतरफ छोड़कर चले जाते हैं। यह निर्ग्रन्थ मुनियों के अन्तिम संस्कार की वही **विजहना** प्रथा है, जिसका वर्णन 'भगवती-आराधना' में किया गया है। इस प्रथा के उल्लेख की समानता से 'भगवती-आराधना' ग्रन्थ भी 'दिव्यावदान' के समान ही प्राचीन सिद्ध होता है।

प्रथम शताब्दी ई० में रचित 'दिव्यावदान' में निर्ग्रन्थ मुनियों के नग्नरूप का वर्णन होने से सिद्ध है कि प्राचीन बौद्धसाहित्य में दिगम्बर जैन मुनियों का उल्लेख है।

---

९६. 'पुष्करिण्यां' होना चाहिए।
९७. 'श्वेताभ्यां' होना चाहिए।
९८. The Divyāvadāna , pp.165-166.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१५

धम्मपद-अट्ठकथा में निर्ग्रन्थ का नग्नरूप

अट्ठकथा-साहित्य की रचना चौथी-पाँचवी शताब्दी ई० में हुई है। धम्मपद-अट्ठकथा के रचयिता बुद्धघोष हैं। इसमें एक **विसाखावत्थु** नाम की कथा है, जिसमें निर्ग्रन्थों को नग्नरूप में वर्णित किया गया है। कथा इस प्रकार है—

''मिगारसेट्ठिपि पुत्तस्स आवाहमङ्गलं करोन्तो धुरविहारे वसन्तम्पि तथागतं अमनसिकरित्वा दीघरत्तं **नग्गसमणकेसु** पतिट्ठितेन पेमेन चोदियमानो ''मय्हं अय्यानम्पि सक्कारं करिस्सामी'' ति एकदिवसं अनेकसतेसु नवभाजनेसु निरुदकपायासं पचापेत्वा **पञ्चसते अचेलके निमन्तापेत्वा** अन्तोगेहं पवेसत्वा, ''आगच्छतु मे सुणिसा, अरहन्ते वन्दतू'' ति विसाखाय सासनं पहिणि। सा 'अरहन्तो' ति वचनं सुत्वा सोतापन्ना अरियसाविका हट्ठतुट्ठा हुत्वा तेसं भोजनट्ठानं आगन्त्वा ते ओलोकेत्वा, ''**एवरूपा हिरोतप्पविरहिता अरहन्ता नाम न होन्ति,** कस्मा मं ससुरो पक्कोसापेसी'' ति, 'धी, धी' ति सेट्ठिं गरहित्वा अत्तनो वसनट्ठानमेव गता। अचेलका तं दिस्वा सब्बे एकप्पहारेनेव सेट्ठिं गरहिंसु—''किं त्वं गहपति, अञ्ञं नालत्थ, समणस्स गोतमस्स साविकं महाकाळकण्णिं इध पवेसेसि, वेगेन नं इमस्मा गेहा निक्काड्ढापेही'' ति। सो 'न सक्का मया इमेसं वचनमत्तेनेव निक्काड्ढापेतुं, महाकुलस्स सा धीता' ति चिन्तेत्वा, ''अय्या, दहरा नाम जानित्वा वा अजानित्वा वा करेय्युं, तुम्हे तुण्ही होथा'' ति ते उय्योजेत्वा सयं महारहे आसने निसीदित्वा सुवण्णपातियं निरुदकं मधुपायासं परिभुञ्जि।

''तस्मिं समये एको पिण्डपातिकत्थेरो पिण्डाय चरन्तो तं निवेसनं पाविसि। विसाखा ससुरं बीजयमाना ठिता तं दिस्वा 'ससुरस्स आचिक्खितुं अयुत्त' न्ति यथा सो थेरं पस्सति, एवं अपगन्त्वा अट्ठासि। सो पन बालो थेरं दिस्वापि अपस्सन्तो विय हुत्वा अधोमुखो भुञ्जतेव। विसाखा 'थेरं दिस्वापि मे ससुरो सञ्ञं न करोती' ति ञत्वा, ''अतिच्छथ भन्ते, मय्हं ससुरो पुराणं खादती'' ति आह। **सो निगण्ठेहि कथितकाले अधिवासेत्वापि** 'पुराणं खादती' ति वुत्तक्खणेयेव हत्थं अपनेत्वा, ''इमं पायासं इतो नीहरथ, एतं इमस्मा गेहा निक्कड्ढथ, अयं मं एवरूपे मङ्गलकाले असुचिखादकं नाम करोती'' ति आह।''[९९]

अनुवाद

''मिगार सेठ अपने पुत्र के विवाह का मंगल (उत्सव) कर रहा था। यद्यपि पड़ौस के विहार में तथागत (बुद्ध) निवास करते थे, तो भी उनकी उपेक्षा कर सेठ ने नग्न श्रमणों के प्रेम से प्रेरित हो 'मैं आर्यों का भी सत्कार करूँगा' ऐसा सोचकर

९९. विसाखावत्थु / क्र.८ / खुद्दकनिकाये धम्मपद-अट्ठकथा / भाग १ / पृ. २२३-२२४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

एक दिन सैकड़ों नये वर्तनों में जलरहित खीर पकवाई और पाँच सौ नग्नमुनियों को आमंत्रित कर घर के भीतर प्रवेश कराया। मुनियों के आने पर सेठ ने विशाखा (पुत्रवधू) के पास आदेश भिजवाया कि वह आकर मुनियों को प्रणाम करे। विशाखा 'मुनि' नाम सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और भोजनशाला में आयी, किन्तु नग्न मुनियों को देखकर सोचने लगी कि मुनि तो ऐसे लज्जा-भयरहित नहीं होते। मेरे ससुर ने मुझे क्यों बुलवाया? 'छी-छी' इस प्रकार सेठ की निन्दा करती हुई अपने आवास में चली गयी। नग्न मुनि उसे देखकर एक साथ सेठ की निन्दा करने लगे—"धिक्कार है गृहपति! क्या तुम्हें और कोई नहीं मिली, जो तुम श्रमण गौतम की श्राविका को घर में ले आये? इसे तुरन्त घर से निकालो।" सेठ सोचने लगा—'इनके कहने मात्र से मैं इसे नहीं निकाल सकता। यह बड़े कुल की बेटी है।' यह सोचकर वह मुनियों से बोला—"आर्य! यह बालिका है, जाने-अनजाने में यह ऐसा कर बैठी। आप ही शान्त रहें" इस प्रकार समझा-बुझाकर सेठ ने उन्हें बिदा किया और स्वयं बहुमूल्य आसन पर बैठकर स्वर्णपात्र में निर्जल मधुर खीर खाने लगा।

"उसी समय एक भिक्षु भिक्षा के लिए भ्रमण करता हआ उसके घर में प्रविष्ट हुआ। विशाखा ससुर को पंखा झल रही थी। उसने सोचा—'ससुर को बतलाना ठीक नहीं है, स्वयं ही भिक्षु को देख लेंगे।' किन्तु सेठ भिक्षु को देखकर भी अनदेखा करता हुआ नीचे मुँह किये हुए भोजन करता रहा। विशाखा ने यह देखकर कि मेरे ससुर भिक्षु को देखकर भी उसकी ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं, भिक्षु से कहा—"भन्ते! आप जायँ, मेरे ससुर 'पुराना' खा रहे हैं।" जिस सेठ ने पहले विशाखा को निर्ग्रन्थों से क्षमा करा दिया था, उसने इस समय 'पुराना खा रहे हैं (बासी खा रहे हैं) ये वचन सुनते ही भोजन से हाथ हटा लिया और सेवकों से बोला—"यह खीर ले जाओ और इसे (विशाखा को) इस घर से निकाल दो। यह मुझे इस मंगल अवसर पर अशुचिभक्षण करा रही है।"

यह उपर्युक्त पालि उद्धरण का अनुवाद है। इसके बाद विशाखा स्पष्ट कर देती है कि "**पुराना खा रहे हैं** इस कथन का आशय यह था कि मेरे ससुर पूर्वार्जित पुण्यों का ही भोग कर रहे हैं, इस समय भिक्षा न देकर नया पुण्य अर्जित करने से वंचित हो रहे हैं।" बाद में अपनी पुत्रवधू विशाखा की प्रेरणा से बुद्ध का उपदेश सुनकर सेठ बुद्ध का अनुयायी बन जाता है और विशाखा को अपनी माता मान लेता है।

इस कथा में **निर्ग्रन्थों** को स्पष्ट शब्दों में **नग्नश्रमण** कहा गया है और विशाखा, जो कि बुद्धोपासक परिवार से आयी थी, मुनियों के नग्नरूप को देखकर उन्हें लज्जाभय

से रहित कहकर अमुनि घोषित कर देती है और प्रणाम किये बिना ही चली जाती है, इससे भी सिद्ध हो जाता है कि उत्तरकालीन बौद्धसाहित्य में भी निर्ग्रन्थमुनि नग्नरूप में ही वर्णित हैं।

१६
निर्ग्रन्थ में अवास्तविक आचरण का चित्रण

बुद्ध के प्रति विशाखा की अनन्य भक्ति दर्शाने के लिए निर्ग्रन्थों के प्रति उसका तीव्र घृणाभाव दर्शाना आवश्यक था। इसका अवसर उपस्थित करने के लिए धम्मपद-अट्ठकथा के कर्त्ता बुद्धघोष ने निर्ग्रन्थों को ऐसा आचरण करते हुए दिखाया है, जो वास्तविकता के विरुद्ध है। निर्ग्रन्थ मुनि भोजन का निमन्त्रण स्वीकार नहीं करते, अपितु नियत समय पर आहार के लिए स्वयं ही श्रावकों के घरों के सामने से निकलते हैं। उस समय जो भी श्रावक उनका भक्तिपूर्वक प्रतिग्रहण करता है और उनके द्वारा ग्रहण किया गया अभिग्रह (वृत्तिपरिसंख्यान=आहारसम्बन्धी नियमविशेष) यदि वहाँ पूर्ण होता है, तो उसी के घर में खड़े होकर पाणिपात्र में आहार ग्रहण करते हैं। किन्तु बुद्धघोष ने लिखा है कि मिगारश्रेष्ठी ने पाँच सौ निर्ग्रन्थों को भोजन के लिए आमन्त्रित किया और घर में प्रवेश कराया। यदि बुद्धघोष निर्ग्रन्थों को भोजन का निमन्त्रण स्वीकार करनेवाला न दर्शाते, तो पाँच सौ मुनियों का एक घर में आहार के लिए एक साथ प्रवेश युक्तिसंगत सिद्ध न होता और वैसा न होने पर विशाखा के द्वारा पाँच सौ निर्ग्रन्थों का अपमान किया जाना संभव न होता। अतः इसे संभव बनाने के लिए बुद्धघोष ने निर्ग्रन्थों को निमंत्रण देने पर भोजन के लिए आनेवाले साधुओं के रूप में चित्रित किया है, जो वास्तविकता के विरुद्ध है। ऐसा एक उदाहरण धम्मपद-अट्ठकथा की **'निगंठवत्थु अट्ठकथा'** में भी मिलता है। कथा इस प्रकार है—

"**अलज्जितायेति** इमं धम्मदेसनं सत्था जेतवने विहरन्तो निगण्ठे आरब्भ कथेसि। एकस्मिञ्हि दिवसे भिक्खू निगण्ठे दिस्वा कथं समुट्ठापेसुं, "आवुसो, सब्बसो अप्पटिच्छन्नेहि अचेलकेहि इमे निगण्ठा वरतरा, ये एकं पुरिमपस्सम्पि ताव पटिच्छादेन्ति, सहिरिका मञ्ञे एते" ति। तं सुत्वा निगण्ठा "न मयं एतेन कारणेन पटिच्छादेम, पंसुरजादयो पन पुग्गला एव, जीवितिन्द्रियपटिबद्धा एव, ते नो भिक्खाभाजनेसु मा पतिंसूति इमिना कारणेन पटिच्छादेमा" ति वत्वा तेहि सद्धिं वादपटिवादवसेन बहुं कथं कथेसुं। भिक्खू सत्थारं उपसङ्कमित्वा निसिन्नकाले तं पवत्तिं आरोचेसुं। सत्था, "भिक्खवे, अलज्जितब्बेन लज्जित्वा, लज्जितब्बेन अलज्जमाना नाम दुग्गतिपरायणाव होन्ती" ति वत्वा धम्मं देसन्तो इमा गाथा अभासि—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अलज्जिताये लज्जन्ति, लज्जिताये न लज्जरे।
मिच्छादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं॥ ३१६॥

अभये भयदस्सिनो, भये चाभयदस्सिनो।
मिच्छादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति दुग्गति न्ति॥ ३१७॥ धम्मपद।

"तत्थ **अलज्जिताये** ति अलज्जितब्बेन। भिक्खाभाजनञ्हि अलज्जितब्बं नाम, ते पन तं पटिच्छादेत्वा विचरन्ता तेन लज्जन्ति नाम। **लज्जितायेति** अपटिच्छन्नेन हिरिकोपीनङ्गेन लज्जितब्बेन। ते पन तं अपटिच्छादेत्वा विचरन्ता लज्जिताये न लज्जन्ति नाम। तेन तेसं अलज्जितब्बेन लज्जितं लज्जितब्बेन अलज्जितं तुच्छगहणभावेन च अञ्ञथागहणभावेन च मिच्छादिट्ठि होति। तं समादियित्वा विचरन्ता पन ते मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता निरयादिभेदं दुग्गतिं गच्छन्तीति अत्थो। **अभयेति** भिक्खाभाजनं निस्साय रागदोस-मोह-मानदिट्ठि-किलेसदुच्चरितभयानं अनुप्पज्जनतो भिक्खाभाजनं अभयं नाम, भयेन तं पटिच्छादेन्ता पन अभये **भयदस्सिनो** नाम। हिरिकोपीनङ्गं पन निस्साय रागादीनं उप्पज्जनतो तं भयं नाम, तस्स अपटिच्छादनेन **भये चायभयदस्सिनो**। तस्स तं अयथागहणस्स समादिन्नत्ता मिच्छा-दिट्ठिसमादाना सत्ता दुग्गहिं गच्छन्तीति अत्थो।"[१००]

अनुवाद

"**अलज्जिताये**" इत्यादि धर्मदेशना शास्ता ने जेतवन में विहार करनेवाले निर्ग्रन्थों को लक्ष्य में रखकर की है। एक दिन (बौद्ध) भिक्षु निर्ग्रन्थों को देखकर चर्चा करने लगे-"मित्रो, सर्वथा नग्न रहनेवाले साधुओं से ये निर्ग्रन्थ अच्छे हैं, क्योंकि ये सामने का भाग ढँके रहते हैं। इसलिए लगता है कि ये सह्रीक (लज्जावान्) हैं। यह सुनकर निर्ग्रन्थ बोले—"हम इस कारण (लज्जा के कारण) नहीं ढँकते हैं, प्रत्युत धूल आदि भी जीव (पुद्गल)[१०१] ही हैं, वे जीवन और इन्द्रियों से संयुक्त ही हैं, वे हमारे भिक्षापात्रों में न गिर जायँ, इस कारण हम ढँकते हैं।" ऐसा कहने के बाद उनके साथ बहुत देर तक वादविवाद हुआ।

"जब शास्ता (गुरु) बैठे हुए थे, तब भिक्षुओं ने उनके पास जाकर, इस घटना की सूचना दी। शास्ता बोले—"भिक्षुओ! जो लज्जा न करने योग्य कार्य में लज्जा करते हैं और लज्जा करने योग्य कार्य में लज्जा नहीं करते, वे दुर्गति के पात्र होते हैं।" यह कहकर धर्म का उपदेश देते हुए उन्होंने ये गाथाएँ कहीं—

---

१००. निगण्ठवत्थु / क्र.८ / खुद्दकनिकाये धम्मपद-अट्ठकथा / भाग २ / पृ. २७९-२८०।
१०१. पालिभाषा में 'पुग्गल' (पुद्गल) का अर्थ 'जीव' है।

"जो प्राणी लज्जा न करने योग्य कार्य में लज्जा करते हैं और लज्जा करने योग्य कार्य में लज्जा नहीं करते, वे मिथ्या दृष्टि का अवलम्बन करने से दुर्गति को प्राप्त होते हैं।" (गाथा ३१६)।

"जो प्राणी भय न करने योग्य कार्य में भय करते हैं और भय करने योग्य कार्य में भय नहीं करते, वे मिथ्या दृष्टि का आश्रय करने से दुर्गति को प्राप्त होते हैं।" (गाथा ३१७)।

"**अलज्जिताये** इस गाथा का अभिप्राय इस प्रकार है—भिक्षापात्र लज्जा का कारण नहीं है, किन्तु वे निर्ग्रन्थ उसे प्रच्छादित करके विचारण करते हैं अर्थात् भिक्षापात्र का दूसरों को दिखना उनके लिए लज्जा कारण होता है। किन्तु अनावृत पुरुषचिह्न (लिंग) लज्जा का कारण है, फिर भी वे निर्ग्रन्थ उसे बिना ढँके ही विचरण करते हैं। यह लज्जा की बात है, किन्तु वे उससे लज्जित नहीं होते। इस प्रकार जो कार्य लज्जा के योग्य नहीं है, उससे वे लज्जित होते हैं। और जो लज्जा के योग्य है उससे लज्जित नहीं होते। यह अन्यथाग्रहणभाव मिथ्या दृष्टि है। इस मिथ्या दृष्टि को ग्रहण कर विचरण करते हुए वे प्राणी नरकादि दुर्गति को प्राप्त होते हैं।"

"**अभये** इस गाथा का अर्थ इस प्रकार है—भिक्षापात्र के निमित्त से राग, द्वेष, मोह, मान, क्लेश, दुश्चरित्र आदि के भय उत्पन्न नहीं होते, इसलिए भिक्षापात्र भय का कारण नहीं है, तथापि भय का कारण समझकर उसे वे प्रच्छादित करते हैं। इस प्रकार अभय में भी वे भय देखते हैं। इसके विपरीत पुरुषेन्द्रिय (**हिरिकोपीनङ्ग—ह्रीकौपीनाङ्ग = लज्जाजनक गुप्ताङ्ग**) के निमित्त से रागादि की उत्पत्ति होती है, अतः वह भय का कारण है। फिर भी वे उसे ढँकते नहीं है। इस तरह वे भय में अभय देखते हैं। इस मिथ्या दृष्टि के आश्रय से प्राणी दुर्गति में जाते हैं।"

इस अट्ठकथा में निर्ग्रन्थों (दिगम्बरजैन मुनियों) को भिक्षापात्रधारी बतलाया गया है, जो वास्तविकता के विरुद्ध है। दिगम्बरजैन मुनि भिक्षापात्र नहीं रखते, वे पाणितलभोजी होते हैं इसके विपरीत जो भिक्षापात्र रखते हैं, वे श्वेताम्बर मुनि नग्न नहीं रहते। वस्त्रलब्धियुक्त जिनकल्पी श्वेताम्बर मुनियों का शरीर अलौकिक वस्त्र से आच्छादित बतलाया गया है और वस्त्रलब्धि-रहित जिनकल्पियों की नग्नता एक, दो या तीन कल्पों (प्रावरणों) के धारण करने से अदृष्टिगोचर कही गयी है। स्थविरकल्पी श्वेताम्बर मुनि तो प्रावरणों के अतिरिक्त चोलपट्ट भी धारण करते थे। इस प्रकार कोई भी श्वेताम्बर मुनि नग्न नहीं रहता था। श्वेताम्बरग्रन्थों में मुनि का नग्न रहना असंयम और निर्लज्जता का कारण माना गया है।[१०२] इसलिए यदि इस कथा में भिक्षापात्र के वर्णन से श्वेताम्बर

---

१०२. देखिये, द्वितीय अध्याय / तृतीय प्रकरण / शीर्षक ३.३.१ 'जिनकल्पी भी सचेल और अनग्न।'

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मुनियों का कथन माना जाय, तो उन्हें नग्नरूप में वर्णन करना श्वेताम्बर-मुनिधर्म के विरुद्ध है, फलस्वरूप इस कथा में उनका कथन नहीं माना जा सकता। यतः सम्पूर्ण बौद्धसाहित्य में 'निर्ग्रन्थ' शब्द से दिगम्बरजैन मुनियों का ही वर्णन किया गया है, अतः इस अट्ठकथा में दिगम्बरजैन मुनियों का ही कथन है, यह निर्विवाद है। तथा अन्य किसी भी स्थान पर निर्ग्रन्थों को भिक्षापात्रधारी नहीं बतलाया गया है, इससे सिद्ध है कि बुद्धघोष ने "जो प्राणी लज्जा न करने योग्य कार्य में लज्जा करते हैं और लज्जा करने योग्य कार्य में लज्जा नहीं करते, वे दुर्गति को प्राप्त होते हैं", बुद्ध के इस उपदेश को किसी प्रसंग से जोड़ने के लिए निर्ग्रन्थों का प्रसंग कल्पित किया है। और "जो लज्जा करने योग्य कार्य में लज्जा नहीं करते" यह तो निर्ग्रन्थों पर स्वधर्मतः घटित हो जाता है, किन्तु "जो लज्जा का कारण नहीं है, उसमें लज्जा करते हैं" यह स्वधर्मतः घटित नहीं होता। अतः इसे घटित करने के लिए बुद्धघोष ने उनके साथ भिक्षापात्र ग्रहण करने का धर्म अपने मन से जोड़ दिया है। और विचित्र बात यह है कि जब वे निर्ग्रन्थों के मुख से स्वयं कहलवा रहे हैं कि भिक्षापात्र को हम लज्जा के कारण नहीं ढँकते, अपितु उसमें जीव न गिर जायँ, इसलिए ढँकते हैं, फिर भी यह मान लिया गया है कि वे भिक्षापात्र को लज्जा के ही कारण वस्त्र से ढँकते हैं। और भिक्षापात्र को ढँकने, न ढँकने में लज्जा, अलज्जा का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि वह कोई अश्लील अशोभनीय वस्तु नहीं है। अतः वे निर्ग्रन्थ लज्जा के कारण भिक्षापात्र को वस्त्र से ढँकते हैं, यह कल्पना ही, असंगत है। यह भी एक विचित्र बात है कि अट्ठकथा-लेखक पहले यह भ्रम पैदा करते हैं कि निर्ग्रन्थों ने अपने गोपनीय अंग को वस्त्र से आच्छादित कर रखा है, बाद में यह स्पष्ट करते हैं कि गोपनीय अंग नहीं, अपितु भिक्षापात्र वस्त्र से ढँका गया है। इसके अतिरिक्त ये निर्ग्रन्थ सर्वथा नग्न थे, फिर भी यह तुलना की गई है कि सर्वथा नग्न रहनेवाले साधुओं से गोपनीय अंग को प्रच्छादित करनेवाले ये निर्ग्रन्थ अच्छे हैं, सह्रीक (लज्जावान्) मालूम होते हैं। ये विसंगतियाँ एवं मिथ्या कथन सिद्ध करते हैं कि अट्ठकथा-लेखक ने अपने प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए निर्ग्रन्थों के साथ उन आचरणों को भी जोड़ दिया है, जो वास्तविकता के विरुद्ध हैं।

१७

बौद्धसाहित्य में वस्त्रधारी निर्ग्रन्थों का उल्लेख नहीं

पालि-त्रिपिटक में तो 'निर्ग्रन्थ' शब्द से दिगम्बरजैन मुनि का ही चित्रण किया गया है, बौद्ध-अट्ठकथाओं में भी ऐसा ही उपलब्ध होता है। किन्तु श्वेताम्बरमुनि श्री नगराज जी ने धम्मपद-अट्ठकथा की 'निगंठवत्थु' एवं 'कुण्डलकेसीथेरीवत्थु' में तथा

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

थेरीगाथा-अट्ठकथा की 'भद्दाकुण्डलकेसा-थेरीगाथा वण्णना' में वस्त्रधारी निर्ग्रन्थों की चर्चा होने की बात कही है। 'निगंठवत्थु' की समीक्षा करते हुए वे लिखते हैं—

"इस घटना-प्रसंग में निगण्ठों के वस्त्रधारण की चर्चा है, पर यह स्पष्ट नहीं होता कि किस प्रकार का वस्त्र वे धारण करते थे और उसका क्या प्रयोजन था? पर, इससे इतना तो स्पष्ट होता ही है कि बौद्धपरम्परा को सचेलक और अचेलक, दोनों ही प्रकार के निगण्ठों का परिचय है।" (आगम और त्रिपिटक: एक अनुशीलन/ खं.१/पृ.४३९)।

धम्मपद-अट्ठकथा (८/३) और थेरीगाथा-अट्ठकथा (९) की 'कुण्डलकेसी-थेरीवत्थु' या 'भद्दाकुण्डलकेसा-थेरीगाथा-वण्णना' की समीक्षा में मुनि जी कहते हैं—

"प्रसंग बहुत ही सरस व घटनात्मक है। बुद्ध की प्रमुख शिष्या का पहले निगंठसंघ में दीक्षित होना, एक विशेष बात है। केशलुंचन व श्वेतवस्त्रधारी निगण्ठों का उल्लेख ऐतिहासिक महत्त्व का है।" (आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन/ खण्ड/१/पृ.४४७)।

उक्त कथाओं में वस्त्रधारी या श्वेतवस्त्रधारी निर्ग्रन्थों की चर्चा होने की बात सर्वथा मिथ्या है। उनमें निगंठों के वस्त्रधारी होने का कथन कहीं भी नहीं है। धम्मपद-अट्ठकथा की 'निगंठवत्थु' कथा में तो इस तथ्य का स्पष्टीकरण पूर्व में किया जा चुका है। अन्य दो कथाओं में भी निगण्ठों के साथ 'वस्त्रधारी' विशेषण के अभाव के प्रमाण नीचे दिये जा रहे हैं।

१७.१. कुण्डलकेसित्थेरीवत्थु

इस कथा का वर्णन धम्मपद-अट्ठकथा के आठवें सहस्सवग्ग (सहस्सवग्गो) में तीसरे क्रम (८/३) पर तथा थेरीगाथा-अट्ठकथा में नौवें क्रम पर है। दोनों में कथा समान है, केवल श्रेष्ठिपुत्री भद्रा के दीक्षासम्प्रदाय दोनों में भिन्न-भिन्न बतलाये गये हैं। धम्मपद-अट्ठकथा में वर्णित कथा का सार इस प्रकार है—

कुछ राजपुरुष एक चोर युवक को पकड़कर वधस्थल ले जा रहे थे। श्रेष्ठिपुत्री भद्रा उसे देखकर मोहित हो जाती है और उसके साथ विवाह के लिए माता-पिता से हठ करती है। पिता राजपुरुषों को एक हजार मुद्राएँ देकर चोर को छुड़ा लेता है और उसके साथ पुत्री का विवाह कर देता है। चोर युवक ससुराल में ही रहने लगता है। भद्रा सदा आभूषणों से लदी रहती थी। चोर युवक के मन में विचार आता है कि किसी बहाने उसे चौरप्रपात पर्वत पर ले जाकर मार डाला जाय और आभूषण लेकर भाग जाया जाय। वह भद्रा को पर्वत पर ले जाता है। पर्वत पर पहुँचने

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पर जब भद्रा को अपने पति के षड्यन्त्र का पता चलता है, तब वह उसे ही पर्वत से ढकेलकर मार डालती है और आभूषण वहीं छोड़कर भाग आती है। किन्तु फिर लोकापवाद के भय से घर नहीं जाती और परिव्राजकों के आश्रम में जाकर प्रव्रज्या ग्रहण कर लेती है। बाद में वह बौद्धधर्म में दीक्षित हो जाती है। वहाँ उसका नाम कुण्डलकेसी रख दिया जाता है। परिव्राजकों के आश्रम में जाकर भद्रा के प्रव्रज्या ग्रहण करने के वृत्तान्त का मूल पाठ नीचे दिया जा रहा है—

''सापि चोरं पपाते खिपित्वा चिन्तेसि, ''सचाहं गेहं गमिस्सामि, 'सामिको ते कुहिं' ति पुच्छिस्सन्ति। सचाहं एवं पुट्ठा—'मारितो मे' ति वक्खामि, 'दुब्बिनीते सहस्सं दत्वा तं आहरापेत्वा इदानि नं मारेसी' ति मं मुखसत्तीहि विज्झिस्सन्ति, 'आभरणत्थाय सो मं मारेतुकामो अहोसी' ति वुत्तेपि न सद्दहिस्सन्ति, अलं मे गेहेना' ति तत्थेवाभरणानि छड्डेत्वा अरञ्ञं पविसित्वा अनुपुब्बेन विचरन्ती **एकं परिब्बाजकानं अस्समं पत्वा वन्दित्वा—'मय्हं भन्ते, तुम्हाकं सन्तिके पब्बज्जं देथा' ति आह**। अथ नं पब्बाजेसुं।'' (धम्मपद-अट्ठकथा/भा.२/८/३/पृ.३२६)।

अनुवाद—''उसने भी चोर को प्रपात में गिराकर सोचा कि अब यदि मैं घर लौटती हूँ, तो लोग पूछेंगे कि तुम्हारा स्वामी कहाँ है? यदि मैं कहूँगी कि उसे मैंने मार डाला, तो वे कहेंगे कि दुष्टे! हजार मुद्राएँ देकर तो उसके साथ घर बसाया था, आज उसे भी मार डाला? ऐसा कहकर वे मुझ पर कटाक्ष करेंगे। यदि मैं कहूँगी कि वह आभूषणों के लिए मुझे मार डालना चाहता था, तो वे मेरी बात पर विश्वास नहीं करेंगे। इसलिए मेरा घर न जाना ही उचित है। यह सोचकर उसने आभूषण वहीं छोड़ दिये और वन में प्रवेश कर विचरण करती हुई परिव्राजकों के एक आश्रम में पहुँची। वहाँ परिव्राजकों को प्रणाम कर वह बोली—''भन्ते! मुझे अपने धर्म में प्रव्रज्या दीजिए। उन्होंने उसे प्रव्रज्या दे दी।''

थेरीगाथा-अट्ठकथा में यह अंश इस प्रकार है—''ततो भद्दा चिन्तेसि, 'न सक्का मया इमिना नियामेन गेहं गन्तुं, इतोव गन्त्वा एकं पब्बज्जं पब्बजिस्सामी' ति निगण्ठारामं गन्त्वा निगण्ठे पब्बज्जं याचि। अथ नं ते आहंसु 'केन नियामेन पब्बज्जा होतू' ति? 'यं तुम्हाकं पब्बज्जाय उत्तमं, तदेव करोथा' ति। ते 'साधू' ति तस्सा तालट्ठिना केसे लुञ्चित्वा पब्बाजेसुं। पुन केसा वड्ढन्ता कुण्डलावट्टा हुत्वा वड्ढेसुं। ततो पट्ठाय कुण्डलकेसाति नाम जाता।'' (थेरीगाथा-अट्ठकथा / ९-भद्दाकुण्डलकेसा थेरीगाथा-वण्णना / पृ.११२)।

अनुवाद—''तब भद्रा ने सोचा कि मैं इस दशा में (पति की हत्या करने के बाद) घर नहीं जा सकती। यहाँ से जाकर प्रव्रज्या ग्रहण करूँगी। यह सोचकर निर्ग्रन्थों के आश्रम में गयी और उनसे प्रव्रज्या की याचना की। वे उससे बोले—''किस नियम

(विधि) से प्रव्रज्या दी जाय?'' उसने कहा—''आपकी प्रव्रज्या में जो उत्तम है, वही कीजिए। उन्होंने कहा—''ठीक है'' और तालट्ठि से उसके केशों का लुञ्चन कर प्रव्रज्या दे दी। उसके बाद उसके केश बढ़ते हुए कुण्डलाकार (घुँघराले) हो गये। तब से उसका नाम कुण्डलकेसा पड़ गया।''

कुछ समय बाद वह गौतम बुद्ध के पास जाकर प्रव्रज्या ले लेती है और अपनी पूर्व प्रव्रज्या की सदोषता का वर्णन करती हुई कहती है—

लूनकेसी पङ्कधरी एकसाटी पुरे चरिं।
अवज्जे वज्जमतिनी वज्जे चावज्जदस्सिनी॥ १०७॥ थेरीगाथा।

अनुवाद—''मैं पूर्व में केशों का लुंचन कर, मैल धारण कर और एक साड़ी पहनकर निर्दोष को सदोष और सदोष को निर्दोष मानती हुई विचरण करती रही।''

इस गाथा की व्याख्या **थेरीगाथा-अट्ठकथा** के कर्त्ता ने इस प्रकार की है—''तत्थ लूनकेसीति लूना लुञ्चिता केसा मय्हन्ति लूनकेसी, **निगण्ठेसु पब्बज्जाय तालट्ठिना लुञ्चितकेसा, तं सन्धाय वदति। पङ्कधरीति** दन्तकट्ठस्स अखादनेन (दातौन को न चबाने से) दन्तेसु मल पङ्कधारणतो पङ्कधरी। **एकसाटीति** निगण्ठचारित्तवसेन एकसाटिका। पुरे चरिन्ति (चरिं इति) पुब्बे निगण्ठी हुत्वा एवं विचरि। **अवज्जे वज्जमतिनीति** न्हानुच्छादन-दन्तकट्ठ-खादनादिके अनवज्जे सावज्जसञ्ञी। **वज्जे चावज्जदस्सिनीति** मानमक्ख-पलास-विपल्लासादिके सावज्जे अनवज्जदिट्ठी।'' (थेरीगाथा-अट्ठकथा / ९-भद्दाकुण्डलकेसा-थेरीगाथावण्णना / पृ.११९)।

अनुवाद—''निर्ग्रन्थों की प्रव्रज्या में केशों का लुंचन होता है, उसी को ध्यान में रखकर भद्रा अपने को लूनकेशी कहती है। दातौन (दन्तकाष्ठ) न करने के कारण दाँतों में मैल लग जाने से पङ्कधरी हो गई थी। निर्ग्रन्थसम्प्रदाय में साध्वी (आर्यिका) के लिए एक ही साड़ी धारण करने का नियम है, इसलिए वह एकशाटी धारण करती थी। पूर्व में निर्ग्रन्थी (आर्यिका) होकर वह इस वेश में विचरण करती थी। स्नान, उच्छादन (शरीर को रगड़ना), दन्तधावन आदि निर्दोष कार्यों को वह दोषपूर्ण मानती थी और अभिमान, परनिन्दा (मक्ख) ईर्ष्या (पलास), वचन पर स्थिर न रहना (विपल्लास) आदि दोषपूर्ण कार्यों को निर्दोष समझती थी।''

इनमें से प्रथम कथा में तो यह कहा गया है कि भद्रा कुण्डलकेशी ने परिव्राजकों से प्रव्रज्या ग्रहण की थी, निर्ग्रन्थों का तो कहीं नाम भी नहीं आया। दूसरी कथा में निर्ग्रन्थों से प्रव्रज्या ग्रहण करने का कथन है, किन्तु सम्पूर्ण कथा में निर्ग्रन्थों के साथ 'श्वेतवस्त्रधारी' विशेषण का कहीं भी उल्लेख नहीं है। इसलिए मुनि श्री नगराज

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जी ने जो यह अनुवाद किया है कि "वह (भद्रा) पर्वत से नीचे उतरकर श्वेतवस्त्रधारी निगण्ठों के संघ में प्रव्रजित हो गयी" मूलकथा के सर्वथा विपरीत है।

१७.२. मुनि श्री नगराज जी के भ्रम का कारण

वस्तुतः यही कथा खुद्दकनिकाय के **अपदान** नामक ग्रन्थ में भी आयी है, जिसका वर्णन **थेरी** २.३.१-५४ में किया गया है। उसमें १ से ५४ गाथाओं में भद्रा उपर्युक्त कथा का आत्मकथा के रूप में वर्णन करती है। इस कथा में कहा गया है कि भद्राकुण्डलकेशी ने 'श्वेतवस्त्र मुनियों' (**सेतवत्थानं**) के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण की—

तदाहं पातयित्वान गिरिदुग्गम्हि सत्तुकं।
सन्तिकं सेतवत्थानं उपेत्वा पब्बजिं अहं॥ ३६॥

सण्डासेन च केसे मे लुञ्चित्वा सब्बसो तदा।
पब्बजित्वान समयं आचिक्खिंसु निरन्तरं॥ ३७॥

अनुवाद—"उस दुर्गम पर्वत से सत्तुक ('सत्तुक' नाम के चोर पति) को नीचे गिराकर मैं 'श्वेतवस्त्रों' (श्वेतपटों अर्थात् श्वेताम्बर मुनियों) के पास जाकर प्रव्रजित हो गयी। मेरे सभी केश सँड़सी से लुचिंत कर मुझे दीक्षित कर दिया गया। तत्पश्चात् वे निरन्तर धर्मोपदेश देने लगे।"

'**अपदान**' की ये समस्त ५४ गाथाएँ 'थेरीगाथा-अट्ठकथा' की '**भद्दाकुण्डलकेसा-थेरीगाथा-वण्णना**' (क्र.९) में निम्नलिखित वाक्यों के अनन्तर उद्धृत की गयी हैं—"सत्था तस्सा ञाणपरिपाकं ञत्वा—

सहस्समपि चे गाथा अनत्थपदसंहिता।
एकं गाथापदं सेय्यो यं सुत्वा सुपसम्मती ति॥

इमं गाथमाह। गाथापरियोसाने यथाटिताव सह पटिसम्भिदाहि अरहत्तं पापुणि। तेन वुत्तं **अपदाने** (अप./थेरी/२.३.१-५४)—

पदमुत्तरो नाम जिनो सब्बधम्मान पारगू।
इतो सतसहस्सम्हि कप्पे उप्पज्जि नायको॥ १॥

यह 'अपदान' (थेरी २.३) की पहली गाथा है। इसके बाद शेष ५३ गाथाएँ उद्धृत हैं। इन्हीं के अन्तर्गत उपर्युक्त '**तदाहं पातयित्वान**' आदि दो गाथाएँ (३६-३७) उद्धृत हैं।

इस प्रकार "भद्राकुण्डलकेसा अपने पति को पर्वत से नीचे ढकेलने के बाद श्वेतवस्त्र मुनियों के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण करती है" ये वचन **अपदान** में वर्णित

कथा में कहे गये हैं, **थेरीगाथा-अट्ठकथा** की कथा में नहीं। 'थेरीगाथा-अट्ठकथा' की कथा में तो यह कहा गया है कि वह (भद्रा) निर्ग्रन्थों के आश्रम में जाकर प्रव्रज्या लेती है—"**निगण्ठारामं गन्त्वा निगण्ठे पब्बज्जं याचि।**" यहाँ 'निगण्ठ' शब्द के साथ 'श्वेतवस्त्र' विशेषण नहीं है, न ही 'अपदान' में वर्णित ३६वीं गाथा में **सेतवत्थ** (श्वेतवस्त्रवाले) शब्द के साथ **निगण्ठ** विशेष्य है। इसी प्रकार धम्मपद-अट्ठकथा में वर्णित 'कुण्डलकेसी' वृत्तान्त में बतलाया गया है कि भद्रा परिव्राजकों के आश्रम में जाकर प्रव्रज्या ग्रहण करती है। इस तरह तीनों कथाओं में भद्रा को परिव्राजक, निर्ग्रन्थ और श्वेतपट, इन तीन अलग-अलग सम्प्रदायों में प्रव्रज्या ग्रहण करते हुए और बाद में उन्हें छोड़कर बौद्धमत में प्रव्रजित होते हुए चित्रित किया गया है। इसका प्रयोजन था बौद्धमत के अतिरिक्त अन्य मतों को हीन सिद्ध करना।

किन्तु मुनि श्री नगराज जी ने 'अपदान' की कथा में वर्णित श्वेतवस्त्र-मुनियों और थेरीगाथा-अट्ठकथा की कथा में उल्लिखित निर्ग्रन्थ-मुनियों को अभिन्न समझकर यह मान लिया है कि बौद्धसाहित्य में श्वेतवस्त्रधारी निर्ग्रन्थ मुनियों का उल्लेख है। उनकी यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है, क्योंकि 'वस्त्रधारी' शब्द और 'निर्ग्रन्थ' शब्द दिन और रात के समान परस्परविरुद्धार्थी हैं। पूर्व में जैन, वैदिक और बौद्ध साहित्य, संस्कृतसाहित्य एवं शब्दकोशों से उद्धरण देकर सिद्ध किया गया है कि 'निर्ग्रन्थ' शब्द ऐकान्तिकरूप से नग्नमुद्राधारी मुनि का वाचक है। तथा कदम्बवंशीय राजा श्रीविजय-शिवमृगेशवर्मा का देवगिरि-ताम्रपत्रलेख (क्र. ९८) इस तथ्य का पक्का सबूत है कि भारतीय इतिहास में 'निर्ग्रन्थ' और 'श्वेतपट' नाम के परस्परभिन्न दो सम्प्रदाय प्रसिद्ध थे, क्योंकि ऐतिहासिक प्रसिद्धि के बिना अभिलेखों में उनका भिन्न सम्प्रदायों के रूप में उल्लेख नहीं हो सकता। और जैसा राजा श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा के ताम्रपत्रलेख में उनकी भिन्नता का उल्लेख है, वैसा किसी भी अभिलेख एवं भारत के किसी भी सम्प्रदाय के साहित्य में उनके एकत्व का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। अर्थात् जो निर्ग्रन्थ है, उसके श्वेतपट होने का उल्लेख उपलब्ध नहीं है और जो श्वेतपट है, उसके निर्ग्रन्थ होने का उल्लेख अनुपलब्ध है। अतः मुनि श्री नगराज जी की यह धारणा कि बौद्धसाहित्य में श्वेतवस्त्रधारी निर्ग्रन्थ मुनियों का उल्लेख है, इतिहासविरुद्ध धारणा है।

तथा भद्रा को जो 'एकशाटी' विशेषण दिया गया है, वह भी इस बात का प्रमाण है कि भद्रा दिगम्बरजैन-सम्प्रदाय की आर्यिका पद पर दीक्षित हुई थी, क्योंकि दिगम्बर-सम्प्रदाय में ही आर्यिकाओं के लिए केवल एक साड़ी पहनने का नियम है। दिगम्बर-सम्प्रदाय की क्षुल्लिका भी दो वस्त्रधारण करती है। तथा श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में आर्यिका का जिनकल्पी होना निषिद्ध है, और जब उस सम्प्रदाय के जिनकल्पी

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

साधु भी एक से तीन तक सूती-ऊनी प्रावरण (चादर) रखते थे तथा स्थविरकल्पी साधु तीन प्रावरणों के अतिरिक्त चोलपट्ट भी धारण करते हैं, तब साध्वियों के केवल एक-साड़ी-धारी होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। श्वेताम्बरमुनि श्री कल्याणविजय जी ने भी लिखा है कि "इनके (श्रमणियों के) लिए शास्त्रकारों ने अनेक प्रकार के विशेष वस्त्र माने हैं, जिनसे कि इनकी मान-मर्यादा और शीलसम्पत्ति की रक्षा हो।" (मानव-भोज्य-मीमांसा/पृ.४९२)। अतः एकशाटीधारी भद्राकुण्डलकेसा ऐकान्तिकरूप से नग्न रहनेवाले निर्ग्रन्थों के ही सम्प्रदाय की थी, इसमें सन्देह के लिए स्थान नहीं है। इससे भी सिद्ध है कि **थेरीगाथा-अट्ठकथा** की **कुण्डलकेसाकथा** में केवल निर्ग्रन्थ मुनियों का उल्लेख है और **अपदान** की **कुण्डलकेसाकथा** में केवल श्वेतवस्त्रधारी मुनियों का। श्वेतवस्त्रधारी निर्ग्रन्थों का उल्लेख किसी भी कथा में नहीं है।

१८
आर्यशूरकृत जातकमाला में निर्ग्रन्थश्रमण का नग्नरूप

आर्यशूर ने संस्कृत में 'जातकमाला' नामक ग्रन्थ की रचना की है। उनका कालनिर्धारण करते हुए श्री सूर्यनारायण चौधरी लिखते हैं—"अजन्ता की पत्थर की दीवारों पर जातकमाला के क्षान्तिवादी, मैत्रीबल, महाहंस, रुरु, शिबि, महाकपि, महिष आदि जातकों के दृश्य चित्रित हुए हैं और दृश्यपरिचय के लिए उन जातकों से उपयुक्त श्लोक भी उद्धृत हुए हैं। श्लोकों के अभिलेख की लिपि छठी शती की है। इससे अनुमान होता है कि ५वीं शती में जातकमाला की ख्याति हो चुकी थी।"[१०३] डॉ० बलदेव उपाध्याय ने भी यही लिखा है और वे आगे कहते हैं—"कहा जाता है कि आर्यशूर ने कर्मफल के ऊपर एक सूत्र लिखा था, जिसका चीनी अनुवाद ४३४ ई० में हुआ था। यदि दोनों आर्यशूर एक ही अभिन्न व्यक्ति हों, तो इनका समय पंचम शतक से पूर्व चतुर्थ शतक में अनुमानसिद्ध माना जा सकता है। अजन्ता की दीवारों में चित्रित होने से भी इनका समय पंचम शतक में निश्चयेन सिद्ध होता है।"[१०४]

आर्यशूर ने जातकमाला में एक **कुम्भजातक** का वर्णन किया है, जिसमें गौतमबुद्ध अपने एक पूर्वजन्म में देवों के इन्द्र होते हैं। देवेन्द्र होते हुए भी वे मनुष्यों का उपकार करना नहीं छोड़ते। एक बार जब वे मनुष्यलोक का निरीक्षण कर रहे थे, तब उन्होंने देखा कि सर्वमित्र नामक राजा को मद्यपान की लत लग गई है। वे उसे उस लत से मुक्त करना चाहते हैं। इसके लिए वे साधु के वेश में एक घड़ा लेकर राजा की सभा में आते हैं तथा पूछते हैं कि इस सुन्दर घड़े को कौन खरीदना चाहता

१०३. जातकमाला / भूमिका / पृष्ठ ८ / मोतीलाल बनारसीदास / सन् २००१।
१०४. संस्कृत साहित्य का इतिहास / पृ. २१५।

है? यह एक ऐसी विक्रेय वस्तु से भरा है, जिसे पीकर मुनष्य लज्जा खो देता है और निर्ग्रन्थ के समान वस्त्र पहनने के कष्ट से मुक्त होकर जनाकीर्ण रास्तों पर लड़खड़ाते हुए चलता है—

पीत्वोचितामपि जहाति ययात्मलज्जां निर्ग्रन्थवद्वसनसंयमखेदमुक्तः।
धीरं चरेत्पथिषु पौरजनाकुलेषु सा पण्यतामुपगता निहितात्र कुम्भे॥ १५॥

इस प्रकार चतुर्थ शताब्दी ई० की आर्यशूरकृत जातकमाला (बौद्ध ग्रन्थ) में भी निर्ग्रन्थ साधुओं को नग्न ही बतलाया गया है।

१९
'दिव्यावदान' के रचनाकाल में यापनीयों का उदय नहीं

मुनि श्री कल्याणविजय जी ने लिखा है—"बौद्धों के प्राचीन शास्त्रों में नग्न जैन साधुओं का कहीं उल्लेख नहीं है और विसाखावत्थु , धम्मपद-अट्ठकथा, दिव्यावदान आदि में जहाँ नग्न निर्ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, वे ग्रन्थ उस समय के हैं, जब कि यापनीयसंघ और आधुनिक सम्प्रदाय तक प्रकट हो चुके थे।" (श्र.भ.भ./पृ.३३०)।

मुनिजी का यह कथन प्रमाणविरुद्ध और अतर्कसंगत है। अट्ठकथाओं का रचनाकाल अवश्य चौथी-पाँचवीं शताब्दी ई० है, किन्तु 'दिव्यावदान' का रचनाकाल विद्वानों ने प्रथम शताब्दी ई० माना है, यह पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है। पाँचवीं शती ई० के पूर्व किसी भी शिलालेख में और श्वेताम्बराचार्य श्री हरिभद्रसूरिकृत 'ललितविस्तरा' के पूर्ववर्ती किसी भी ग्रन्थ में यापनीयसंघ का उल्लेख नहीं है। अतः यह किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता कि 'दिव्यावदान' की रचना के पूर्व अर्थात् ई० प्रथम शताब्दी के पहले यापनीयसम्प्रदाय का उदय हो चुका था। जिस बोटिकसम्प्रदाय को मुनि जी ने यापनीयसम्प्रदाय का पूर्वरूप माना है, उसका उदय भी वीर निर्वाण के ६०९ वर्ष बाद अर्थात् ई० सन् ८२ में बतलाया गया है, ईसवी प्रथम शताब्दी के पूर्व नहीं। और वह यापनीयसम्प्रदाय का पूर्वरूप नहीं था, अपितु दिगम्बरजैन-सम्प्रदाय ही था, यह द्वितीय अध्याय में सिद्ध किया जा चुका है। यापनीयसम्प्रदाय की उत्पत्ति पाँचवीं शताब्दी ई० के प्रारंभ में सिद्ध होती है। अतः मुनि जी द्वारा जो यह अवधारणा पैदा करने की कोशिश की गई है कि 'दिव्यावदान' में जिन नग्न निर्ग्रन्थों का उल्लेख है, वह यापनीय-सम्प्रदाय के साधुओं का उल्लेख है, दिगम्बरजैन-सम्प्रदाय के साधुओं का नहीं, सर्वथा प्रमाणविरुद्ध है। यह अतर्कसंगत भी है, क्योंकि 'यापनीय' और 'निर्ग्रन्थ' भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के नाम हैं, यह पाँचवी शती ई० के राजा मृगेशवर्मा के हल्सी-अभिलेख (क्र.९९) से स्पष्ट है। निर्ग्रन्थों और श्वेतपटों से अलग पहचान कराने के

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

लिए 'यापनीय' नाम प्रचलित हुआ था। यदि निर्ग्रन्थों और यापनीयों को अभिन्न मान लिया जायेगा, तो बौद्धसाहित्य में जहाँ-जहाँ 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग हुआ है, वहाँ-वहाँ उसे 'यापनीय' अर्थ का वाचक मानना होगा। और तब 'निगण्ठनाटपुत्त' (भगवान् महावीर) और 'यापनीयनाटपुत्त' में कोई भेद न रहेगा। भगवान् महावीर भी यापनीय-सम्प्रदाय के सिद्ध होंगे और तब या तो निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय का अस्तित्व असत्य सिद्ध होगा अथवा यापनीय-सम्प्रदाय का। अतः मुनि जी का कथन मूल पर कुठाराघात करनेवाला है। वह निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय के पृथक् अस्तित्व का ही लोप कर देता है। इस प्रकार मुनि जी का यह कथन प्रमाणविरुद्ध एवं तर्कविरुद्ध है कि 'दिव्यावदान' में जिन नग्न निर्ग्रन्थों का उल्लेख है वे निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के नहीं, अपितु यापनीय-सम्प्रदाय के हैं। यतः मुनि जी का कथन प्रमाणविरुद्ध एवं तर्कविरुद्ध है, अतः सिद्ध है कि 'दिव्यावदान' में निर्ग्रन्थ (दिगम्बरजैन) सम्प्रदाय के ही नग्नश्रमणों का उल्लेख किया गया है।

इसी प्रकार बौद्धों का अट्ठकथा-साहित्य यद्यपि पिटकसाहित्य से अर्वाचीन है, तथापि उसमें भी जिन निर्ग्रन्थों (नग्न मुनियों) का उल्लेख है, वे निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के ही हैं, यापनीय-सम्प्रदाय के नहीं, यह भी उपर्युक्त प्रमाण एवं तर्क से सिद्ध होता है।

२०
निर्णीतार्थ

इस प्रकार ईसापूर्व-शताब्दियों में रचित ऋग्वेद, महाभारत आदि वैदिकसाहित्य तथा अंगुत्तरनिकाय, मज्झिमनिकाय, दीघनिकाय, उदानपालि आदि बौद्धसाहित्य में नग्न निर्ग्रन्थ श्रमणों (दिगम्बरजैन मुनियों) की चर्चा होने से सिद्ध है कि सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति आदि की विरोधी दिगम्बरजैन-परम्परा वैदिकयुग से पूर्ववर्ती, भगवान् महावीर से पूर्ववर्ती, गौतम बुद्ध से पूर्ववर्ती, ईसा से पूर्ववर्ती, बोटिक शिवभूति से पूर्ववर्ती, यापनीयसंघ से पूर्ववर्ती और आचार्य कुन्दकुन्द से पूर्ववर्ती है। वह भगवान् ऋषभदेव के युग से अविच्छिन्न चली आ रही है। अतः जैनेतर साहित्य में उपलब्ध इन बाह्य प्रमाणों से भी सिद्ध हो जाता है कि—

१. दिगम्बरमत का प्रवर्तन बोटिक शिवभूति ने ईसा की प्रथम शताब्दी में या कुन्दकुन्द ने विक्रम की छठी शताब्दी में किया था, ये दोनों मत कपोलकल्पित हैं।

२. अतः कुन्दकुन्द को दिगम्बरमत-प्रवर्तक सिद्ध करने के लिए जो बोटिकमत को यापनीयमत बतलाया गया है और कुन्दकुन्द के प्रथमतः उसमें दीक्षित होने और

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पश्चात् उससे अलग होकर दिगम्बरमत स्थापित करने की बात कही गयी है, उसकी कपोलकल्पितता स्वतः उद्घाटित हो जाती है।

३. इसी प्रकार भगवान् महावीर ने ऐकान्तिक अचेलधर्म का उपदेश न देकर सचेलाचेलधर्म का उपदेश दिया था और उत्तरभारत में एकमात्र वही परम्परा विद्यमान थी तथा उसके ही विभाजन से श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदाय उत्पन्न हुए थे, दिगम्बर-सम्प्रदाय की स्थापना तो विक्रम की छठी शती में दक्षिण भारत में आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा की गई थी, ये अवधारणाएँ भी अपने-आप मिथ्या सिद्ध हो जाती हैं।

महान् आश्चर्य तो यह है कि जिन आदरणीय श्वेताम्बराचार्यों एवं विद्वानों ने इन कल्पित मतों का आरोपण किया है, उन्होंने जैनेतर (वैदिक, संस्कृत एवं बौद्ध) साहित्य के उपर्युक्त उल्लेखों पर दृष्टिपात नहीं किया, जिनसे दिगम्बरजैन-परम्परा की अति प्राचीनता सिद्ध होती है। उन पर दृष्टिपात किये बिना ही अथवा उन्हें प्रच्छादित कर इन इतिहासविरुद्ध मतों की कल्पना कर डाली। मुनि श्री विजयानन्द सूरीश्वर 'आत्माराम' जी ने अवश्य 'महाभारत' का अनुशीलन कर 'नग्नक्षपणक' के उल्लेख का अन्वेषण किया, किन्तु दुर्भाग्य से उन्होंने अपने ही सम्प्रदाय के शास्त्रों में उपलब्ध प्रमाणों की अवहेलना कर उसे श्वेताम्बरपरम्परा का, जिनकल्पी मुनि घोषित कर दिया, जब कि सभी श्वेताम्बरीय एवं दिगम्बरीय शास्त्र तथा वैदिक, बौद्ध एवं संस्कृत ग्रन्थ एक स्वर से 'क्षपणक' शब्द का अर्थ 'दिगम्बर जैन मुनि' बतला रहे हैं। और मुनि श्री आत्माराम जी ने भी केवल 'महाभारत' का ही अनुशीलन किया, उपरिनिर्दिष्ट अन्य जैनेतर पुराण, संस्कृत नाटक, काव्य आदि तथा विशाल बौद्ध साहित्य के अध्ययन का कष्ट नहीं उठाया।

मुनि श्री कल्याणविजय जी तथा अन्य आधुनिक श्वेताम्बर विद्वानों ने महाभारत के उक्त उल्लेख पर भी ध्यान नहीं दिया, विभिन्न पुराण, पंचतंत्र, काव्य-नाटक, अंगुत्तर-निकाय, मज्झिमनिकाय, दीर्घनिकाय आदि बीस से अधिक अन्य जैनेतर एवं संस्कृत ग्रन्थों के अनुशीलन की तो बात ही दूर। ऐसा लगता है कि उन्होंने जान-बूझकर 'क्षपणक', 'निर्ग्रन्थ', 'अह्रीक', 'अचेल' आदि 'दिगम्बरजैनमुनि'-विषयक उल्लेखों को अन्धकार में रखने की चेष्टा की है, क्योंकि इनसे दिगम्बरजैन-परम्परा वैदिकयुग से भी पूर्ववर्ती सिद्ध होती है, जब कि वे इसे विक्रम की छठी शती (पंचम शताब्दी ई०) में आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा प्रवर्तित सिद्ध करना चाहते थे।

जैनेतर भारतीय साहित्य में उपलब्ध ये उल्लेख दिगम्बरमत की प्राचीनता के ऐसे तटस्थ और स्पष्ट प्रमाण हैं, जिनमें पक्षपात या किसी प्रकार के कपट की शंका स्वप्न में भी नहीं की जा सकती। इन प्रमाणों से श्वेताम्बर मुनियों एवं पण्डितों द्वारा

दिगम्बरजैनमत को अर्वाचीन सिद्ध करने के लिए कल्पित किये गये पूर्वोक्त समस्त मिथ्यामत धराशायी हो जाते हैं, उनके कपोलकल्पित होने का यथार्थ प्रकट हो जाता है और दिगम्बरजैन-परम्परा की अतिप्राचीनता का सूर्य काल्पनिक मतों की घटाओं से मुक्त होकर चमकने लगता है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in